धर्मायण

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

मूल्य : 45 रुपये

अंक 132

आषाढ़,

2080 वि. सं.

योग– विशेषांक

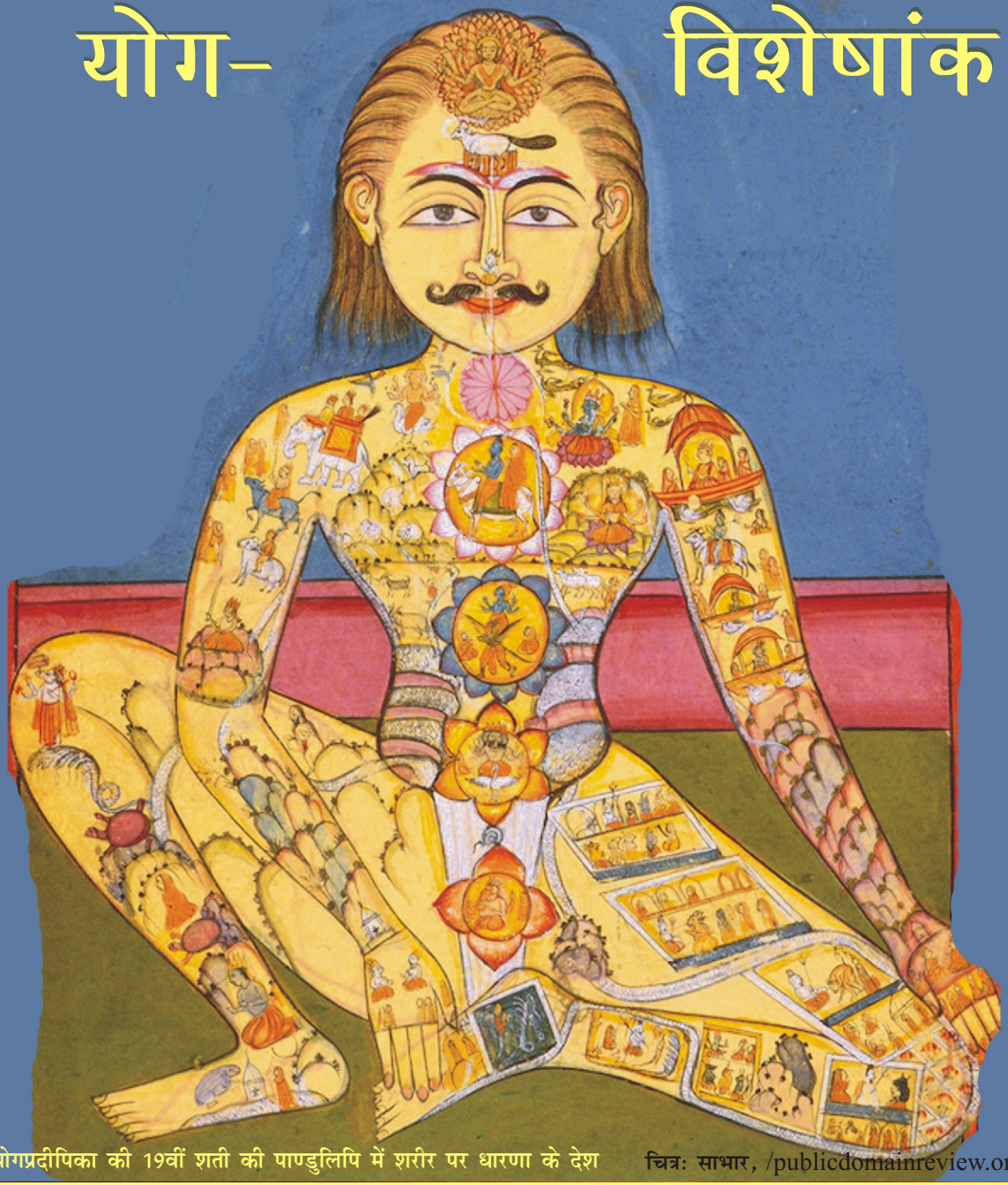

हठयोगप्रदीपिका की 19वीं शती की पाण्डुलिपि में शरीर पर धारणा के देश

चित्रः साभार, /publicdomainreview.org/

विराट रामायण मन्दिर के निर्माण आरम्भ करने की घोषणा हेतु दि. 6 जून, 2023 को प्रेस-सम्मेलन

धर्मायण

Title Code–BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. **योग : इष्टदेव के साथ मिलन का शास्त्र** – सम्पादकीय 3
2. **योग की सनातन बहुमुखी धारा** – श्री राधा किशोर झा 8
3. **औपनिषदिक योग** – विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक 21
4. **पुराण की परम्परा में योग** – डा. श्रीकृष्ण 'जुगनू' 28
5. **शैव-आगमों में योग के सिद्धान्त एवं व्यावहारिक पक्ष** – डा. टी. एस. षण्मुख शिवाचार्य 33
5. **श्री जगन्नाथ क्षेत्र और यहाँ के अखाड़े** – डा. ममता मिश्र 'दाश' 37
6. **योग की अवधारणा** – पं. मार्कण्डेय शारदेय 43
7. **योग के आद्य प्रवर्तक भगवान् हिरण्यगर्भ ब्रह्मा** – श्री महेश शर्मा 'अनुराग' 45
8. **योग से जीवन का उत्कर्ष** – डा. अजय शुक्ला 47
9. **जीवन का प्रकाश पुंज 'योग'** –श्रीमती प्रीति सिन्हा 52
10. **योग में गुरु-शिष्य परम्परा और जन सहभागिता** – डा. राजेन्द्र राज 59
11 **योग-साधना की तैयारी** – श्री रवि संगम 63
12. **रामचरितमानस की रामकथा**– आचार्य सीताराम चतुर्वेदी 71
13. **महावीर मन्दिर समाचार, मई, 2023ई.** 77
14. **व्रत-पर्व, आषाढ़, 2080 विक्रम संवत्** 79

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 132
आषाढ़, 2080 वि. सं.
5 जून-3 जुलाई, 2023ई.

सम्पादक
भवनाथ झा

पत्राचार :
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना–800001, बिहार
फोन: 0612–2223798
मोबाइल: 9334468400

E–mail:
dharmayanhindi@gmail.com

Website:
www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:
9334468400

मूल्य : 45 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 131, ज्येष्ठ, 2080 वि.सं.

आवरण चित्र बहुत ही सार्थक, साभिप्राय तथा मनमोहक है। आदरणीय सम्पादक महोदय जी को सादर प्रणाम एवं धन्यवाद।

डा. शैल कुमारी मिश्र

नवीन अंक का स्वागत। बधाई सभी लेखकों, सहयोगियों को और भवनाथ सहित संपादकीय टीम का अभिनंदन। बड़े नियोजित रूप से अंक की सामग्री जुटाई गई है। संपादकीय में आपने कीमती इंगितियाँ की हैं। पाठक जी ने दैविक दिव्यता की ओर अच्छा संकेत किया है। दिव्य वनस्पति वन की स्वामिनी होती हैं। ममता जी ने सूक्ष्मागम के श्लोक दिए हैं और अपना सुन्दर मत अग्रेषित किया है। लोकपर्वों के प्रसंग वृक्षों के साथ बहुत गम्भीर अर्थ लिए हैं जिनकी ओर शारदा जी ने उद्देश्य रखा है। यह अंक वृक्षों की सर्वसुखी संपदा और सर्वमुखी अंगना की दिशा में महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर सिद्ध होगा...

डा. श्रीकृष्ण जुगनू

धर्मायण का यह वनस्पति-उपासना विशेषांक आदरणीय सम्पादक महोदय की कठिन श्रम-साधना और खोजपूर्ण दृष्टि का परिचायक है, जो आज के पर्यावरण की चिंता करनेवाले ज्ञानी जनों के लिए भी पथ दिखानेवाला है। भारतीय मनीषियों ने वनस्पतियों के महत्त्व का जो गहन चिन्तन-मनन किया था, वे आज भी कितने वैज्ञानिक एवं उपादेय हैं।

डा. राजेन्द्र राज

सम्पादक, सम्पादक मंडली, सारे विज्ञ लेखकों को प्रणाम। सारे अंक ऐसे आयोजित किया गया है कि जिज्ञासा बढ़ती जाती है। मुझे तो हर अंक के बाद लगता है कि, इसका दूसरा भाग भी निकलें, हमें और जानकारी मिलें। हर अंक में सम्पादकीय बहुत सारी जिज्ञासा पैदा करती है।

डा. ममता मिश्र दाश

बहुत-बहुत अभ्यर्थना! इस अंक के गम्भीर पारायणोपरान्त यथाशीघ्र अपनी 'पाठकीय प्रतिक्रिया' प्रेषित करने का प्रयास करूँगा। परम श्रद्धेय डॉक्टर भवनाथ झाजी की सूक्ष्मेक्षिका के समक्ष एक बार पुनः श्रद्धावनत हुए विना कैसे रहा जा सकता है। असीम श्रद्धा व अशेष शुभकामनाओं के साथ,

मित्रनाथ, दरभंगा।

***

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं.– +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अग्रिम अंक **फलश्रुति-विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। वैदिक साहित्य से लेकर सभी आर्ष-ग्रन्थों में प्रत्येक अनुष्ठान या कार्य का फल बताया गया है। कर्म की निन्दा या प्रशंसा की गयी है, जिन्हें हम अर्थवाद कहते हैं। मीमांसा कहती है कि अर्थवाद फलित नहीं होता वह केवल आकृष्ट करने और विरत करने के लिए कहे गये हैं। भागवत में भी कहा गया है– रोचनार्था फलश्रुतिः (11.3.46). इसी से जुड़ा हुआ एक प्रश्न है कि क्या एक कर्म के दो फल भी हो सकते हैं? इस विषय पर मण्डन मिश्र मे ब्रह्मसिद्धि में पर्याप्त प्रकाश डाला है कि एक कर्म के दो फल हो सकते हैं, जैसे हम किसी दूर देश के लिए प्रस्थान करते हैं तो गन्तव्य स्थान तक तो पहुँच ही जाते हैं, साथ-मार्ग के स्थानों से भी उनका परिचय होता जाता है। अतः ज्ञान तथा कर्म दोनों के दो-दो फल प्राप्त होते जाते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में फलश्रुत की सार्थकता और निरर्थकता पर आलेख प्रार्थित हैं।

योग : इष्टदेव के साथ मिलन का शास्त्र

सम्पादकीय **—भवनाथ झा**

वर्तमान समय में हम ज्यों ही योग का नाम सुनते हैं, तो मन में व्यायाम करते हुए लोगों की छवि उभर आती है। योग दिवसों पर विभिन्न प्रकार के आसनों के द्वारा शरीर को स्वस्थ तथा मस्तिष्क को तरोताजा रखने का उपदेश देते हुए, विभिन्न रोगों से छुटकारा पाने के दावे किए जाते हैं। कपालभाति, नेती आदि क्रियाओं के द्वारा केवल शरीर आगत एवं अनागत रोगों से छुटकारा दिला जाता है।

किन्तु हमें विचार करना चाहिए कि क्या भारतीय योग की परम्परा इतनी ही है अथवा इससे कही अधिक व्यापक तथा उपादेय है? यदि हम पतंजलि के योगसूत्र को देखें तो उनके अष्टाङ्गयोग में आसन तो तीसरे अंग के रूप में परिभाषित है, किन्तु परिभाषा के अतिरिक्त आसन का कोई विवरण है।

परवर्ती काल में पद्मासन, मयूरासन, गरुड़ासन, वीरासन आदि जो विभिन्न प्रकार की शारीरिक मुद्राएँ हैं उनका विवेचन योगदर्शन में न होकर आगम के ग्रन्थों में हुआ है। वास्तव में आगम के ग्रन्थ परवर्ती लेखन हैं, जो लौकिक भाषा में किसी न किसी पारम्परिक विद्वान् के द्वारा लिखे गये हैं। इन आगम-ग्रन्थों में प्राचीन काल से प्राप्त ज्ञान का प्रलेखन हुआ है, ज्ञान-विज्ञान की नयी बातें जोड़ी गयीं हैं। इन आगमों के मुख्य चार विषय है— ज्ञान, योग, क्रिया एवं चर्या। इस प्रकार, सभी आगम ग्रन्थों में योग का विवेचन हुआ है और इसी विवेचन क्रम में अनेक प्रकार के आसनों का वर्णन हुआ है, जो हठयोग के रूप में परम्परा में उपलब्ध थे।

आगम की परम्परा के अतिरिक्त कुछ ग्रन्थ हमें केवल योग पर केन्द्रित मिलते हैं जैसे आत्माराम कृत 'हठयोगदीपिका', 'घेरण्ड संहिता', 'गोरक्षपद्धति', 'योगरत्नावली' आदि। 'हठयोगदीपिका' में आसनों तथा मुद्राओं का उल्लेख है। आत्माराम को गोरखनाथ का शिष्य माना गया है।

वर्तमान काल में इन्हीं आसनों एवं मुद्राओं को योग मानना जा रहा है, जो वास्तव में या तो बिल्कुल अलग धारा है, या पतंजलि के योगदर्शन में केवल तीसरे अंग आसन से सम्बन्धित है। यदि हम ऐसा भी मान लें तो अष्टांग योग के केवल एक अंग के विस्तार को हम आज 'योग' कह रहे हैं वह अव्याप्तिदोष से ग्रस्त है।

योगदर्शन के आद्य आचार्य पतंजलि कहे जाते हैं। ये पतंजलि क्या व्याकरण महाभाष्यकार पतंजलि हैं अथवा उनसे भिन्न हैं, इसपर भी ऐकमत्य नहीं है। इस विषय में एक श्लोक पढ़ा जाता है—

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

लेकिन इस श्लोक का प्रामाणिक उल्लेख किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलता है। अतः यह संदेहास्पद है कि पातंजलयोगसूत्र ईसापूर्व दूसरी शती की रचना है अथवा इसके परवर्ती।

अतः हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पातंजल योगसूत्र के नाम पर उपलब्ध ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में जो भारतीय योग की परम्परा है, उस पर भी विशद रूप से विचार किया जाये। वास्तविकता है कि हड़प्पा की खुदाई में मिले अनेक सील पर हमें योगियों के चित्र मिलते हैं। साथ ही, मृण्मय मूर्तियों में भी विभिन्न प्रकार के यौगिक आसनों का स्वरूप पाते हैं। इसका अर्थ है कि परम्परा में ये आसन और मुद्राएँ प्रचलित थीं जिनका प्रलेखन बाद में हुआ।

हड़प्पा की खुदाई से प्राप्त सील एवं मृण्मयमूर्तियों पर योग की कतिपय मुद्राएँ।

दूसरी ओर उपनिषद् साहित्य में हमें योग-दर्शन की पूरी परम्परा मिलती है। वहाँ योग के पाँच और छह अंगों का प्रतिपादन हुआ है। प्राचीन उपनिषदों में योग के अंग के रूप में हमें यम तथा नियम का उल्लेख नहीं मिलता है। वहाँ प्राणायाम से योग का आरम्भ होता है। साथ ही पुराणों में योग का जो वर्णन है वह पातंजल योगदर्शन के सर्वथा अनुरूप ने होकर किसी प्राचीन धार के अनुरूप है। अतः आवश्यकता है कि पतंजलि के अतिरिक्त योग की जो धारा परम्परा में है, उसका भी अध्ययन होना चाहिए। धर्मायण के अंक में हमने इसके लिए प्रयास किया है।

The Madras Brahman who claimed to sit in the air by Yoga powers.

REWARD OF Rs. 1,000.

The above sum is offered to any one who, by yoga powers, will raise himself three feet from the ground, and remain suspended for ten minutes. For conditions, see page 38.

योग से लौकिक चमत्कार की सिद्धि की बात अश्वघोष ने बुद्धचरित में लिखी है। वे लिखते हैं कि योगीश्वर बुद्ध हवा में उड़ सकते थे। उन्होंने पैदल जल के ऊपर चलते हुए पाटलिपुत्र में गंगा नदी को पार किया। वे विना किसी आधार के धरती से ऊपर उठ जाते थे, जिन्हें देखकर जानता उनकी ओर आकृष्ट हुई। इस प्रकार के चमत्कार प्राणायाम के कारण सिद्ध होते हैं। जब साधक वायु की गति पर विजय प्राप्त कर लेता है तो उसका आसन धरती से उठने लगता है। 19वीं शती तक ऐसा चमत्कार दिखानेवाले व्यक्ति थे। सन् 1897 में प्रकाशित John Murdoch की पुस्तक "Yoga Sastra : The Yoga Sutras of Patenjali Examined; with a Notice of Swami Vivekananda's Yoga Philosophy" के आवरण पर एक चित्र प्रकाशित किया गया है, जिसमें भारी भीड़ के बीच सार्वजनिक रूप से मद्रास में एक योगी को योग के बल पर धरती काफी ऊँचाई पर बिना किसी आधार का पद्मासन लगाये दिखाया गया है। वहीं एक सूचना है कि इस प्रदर्शन के लिए उसे 1000 रुपये पुरस्कार दिये गये थे। यह प्राणायाम की सिद्धि के बल पर दिखाया जानेवाला चमत्कार है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योग के जो-जो अंग परम्परा में वर्णित हैं उनमें आसन तथा प्राणायाम ये दोनों बहुत चर्चित रहे और विडम्बना यह रही कि आठ में से केवल इन दोनों को ही योग के रूप में मान लिया गया।

योग का अंग धारणा तथा कर्मकाण्ड का न्यास

शेष अंगों में सबसे अधिक हानि प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान की हुई है। ये दोनों अंग योगदर्शन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। धारणा का व्यावहारिक रूप हमें आगम ग्रन्थों में कर्मकाण्ड के प्रसंग में न्यास के रूप में मिलता है। मातृकान्यास, अंगन्यास एवं करन्यास में बीजमन्त्रों के साथ जब हम विभिन्न ध्येय वस्तुओं तथा बीज मन्त्रों को हृदय आदि स्थानों पर धारण करते हैं तो वही योग के सन्दर्भ में धारणा है। उदाहरण के लिए दुर्गा को इष्टदेवता मानकर जब हम सप्तशती-मन्त्रों से साधना करने लगते हैं तो मातृका न्यास के क्रम में इस प्रकार धारणा करते हैं—

ॐ अं कं खं गं घं ङं आँ हृदयाय नमः।

ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा।

ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्।

ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुँ।

ॐ ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट्।

दोनों के विवेचन से स्पष्ट है कि योग में जिस धारणा का वर्णन आया है, वही अपने विस्तृत रूप में ध्येय के निर्धारण के आधार पर विभिन्न रूपों में 'न्यास' है। इस न्यास की विधि को कर्मकाण्ड तथा तन्त्र कहकर अप्रतिष्ठित कर व्यावहारिक योग से हटा दिया गया है। आज विडम्बना है कि आधुनिक योग में इसकी चर्चा नहीं हो रही है।

इसी प्रकार ध्यान की भी स्थिति है। योग के अंग के रूप में जो ध्यान है उसके अनुसार ध्येय के प्रति चित्त की एकाग्रता ध्यान है। ध्येय इष्टदेवता होते हैं। हर साधक अपनी आस्था तथा परम्परा के अनुसार ध्येय निर्धारित करने के लिए स्वतंत्र है। यही सनातन धर्म की उदारता है, जो हमें कट्टरता से दूर रखती है। व्यावहारिक रूप से जितने व्यक्ति हैं, उतने ध्येय हो सकते हैं। एक ही देवता विभिन्न रूपों में विभिन्न व्यक्तियों के ध्येय बन सकते हैं। मातृशक्ति एक ही है किन्तु इसी ध्यान की अवस्था में उनके विभिन्न रूप है, विभिन्न नाम हैं। यह बहुदेववाद नहीं है, यह है ध्यानभेद से ध्येयभेद। आगम ग्रन्थों तथा पुराणों में हमें इष्टदेवताओं के विभिन्न रूपों के ध्यान मिलते हैं, एक साधक को एक ध्येय का ध्यान करना होता है। वही उनका एकनिष्ठता है। जिस समुदाय में कुलदेवता की परम्परा है, वहाँ एक ही देवता उस वंश के लोगों के लिए ध्येय हैं, उन्हीं का ध्यान किया जाना चाहिए। साधना के क्रम में विभिन्न देवताओं का ध्यान करना साधना भंग है। इस प्रकार, योग का जो ध्यान है, उसका व्यावहारिक रूप हमें कर्मकाण्ड में मिलता है। विडम्बना है कि आधुनिक योग इसे भी त्याग चुका है।

इस प्रकार, वर्तमान में जो योग की अवस्थिति अधर में है। यह तीसरे अंग से आरम्भ होता है और चौथे पर आकर समाप्त हो जाता है, क्योंकि इससे आगे बढ़ने के लिए हमें तन्त्रागम शास्त्र में प्रवेश करना होगा और उसमें वर्णित विधि के आधार पर एक ध्येय का निर्धारण कर समाधि की अवस्था तक पहुँचना होगा जहाँ ध्येय की विविधता समाप्त हो जायेगी औऱ एक ध्येय में अविचल ध्यान लगा रहेगा।

वर्तमान में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर योग और भोग के बीच की दूरी घटती जा रही है। भोग के लिए योग का प्रयोग हो रहा है न कि ध्येय के प्रति अविचल एकाग्रता रूप समाधि के लिए; ब्रह्मसायुज्य के लिए। भारतीय योग हमें इसके द्वारा मोक्ष का मार्ग दिखाता है। इसकी अपनी प्राचीन परम्परा है, वैदिक काल से लेकर विगत शती तक

साधकों ने इसका प्रयोग किया है। आज आवश्यकता है कि हम योग की शक्ति को पहचानें तथा स्मृति-ग्रन्थों के आधार पर यम, नियम रूप आचार का पालन करें, हठयोगदीपिका आदि ग्रन्थों के आधार पर आसन तथा प्राणायाम का पालन करें। विषयों से चंचल मन को हटाकर प्रत्याहार का पालन कर, तन्त्रागमों के आधार अथवा गुरु-शिष्य की परम्परा वा पारिवारिक परम्परा के आधार पर धारणा तथा ध्यान का पालन करें। ध्यान की ही चरमावस्था समाधि तक पहुँचकर ब्रह्म-सायुज्य अथवा इष्टदेव के साथ सायुज्य प्राप्त करें।

आशा करता हूँ कि भारतीय योग परम्परा की व्यापकता पर प्रकाश डालने अथवा कम से कम विशेष अध्ययन हेतु प्रेरित करने के लिए यह अंक उपयोगी होगा।

***

लेखकों से निवेदन

धर्मायण' का अग्रिम अंक **फलश्रुति-विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। विशेष रूप से पुराण-साहित्य में हम स्तोत्र, कर्म, आचरण, आदि के लिए फल का उल्लेख हमें मिलता है। इधर मीमांसा कहती है कि फलश्रुति का कथन प्ररोचनामात्र है, वह कभी घटित नहीं होता है, बल्कि उससे विशिष्ट फल हमें मिलता है। जैसे किसी को प्रातःभ्रमण के लिए प्रवृत्त कराना है तो हम उसे प्रलोभन देंगे कि प्रातःभ्रमण करो तो प्रतिदिन मिठाई खिलावेंगे। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या प्रातःभ्रमण का फल मिठाई है? अथवा यह फल कथन केवल उसे प्रवृत्त करने के लिए एक प्ररोचना मात्र है? इसी प्रकार, जिस चर्या का निषेध करना है उसके लिए हमें पुराणों में पाप का उल्लेख मिलता है, अलौकिक दण्ड का उल्लेख मिलता है। लोक में भी है कि माता अपने बच्चे से कहती है कि यदि आज से बिछावन पर पेशाब करोगे तो साँप की केंचुली कमर में बाँध दूँगी। क्या ऐसा कहीं घटित हुआ है? तब तो हमें मानना होगा कि पुराणों में जो फलश्रुतियाँ हैं वे केवल प्रवृत्त कराने के लिए प्ररोचनामात्र हैं।

आज हमारी सनातन परम्परा पर सबसे अधिक प्रश्नचिह्न इसी विषय को लेकर उठाए जा रहे हैं। अतः हमें फलश्रुतियों पर इस दृष्टिसँ विवेचना करनी चाहिए कि शुभ-अशुभ फल का कथन मात्र प्रवृत्ति-निवृत्ति के लिए है और अन्ततः पुराणकथाओं का उद्देश्य मानव-कल्याण मात्र है।

मीमांसा के अनुसार प्ररोचना पर विशेष रूप से आलेख आमन्त्रित हैं। ब्राह्मण-साहित्य में भी 10 विधियों में निन्दा तथा प्रशंसा ये महत्त्वपूर्ण हैं, जिन्हें अर्थवाद कहा गया है। अर्थवाद से अभिप्राय है– स्तुति और निन्दा के वचन। यज्ञ के अनुष्ठानों की प्रशंसा या अविहित कर्मों की निन्दा करना साभिप्राय है। अग्निष्टोम की प्रशंसा में कहा गया है कि इसके अनुष्ठान से सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। इससे यजमान इन कार्यों में आकर्षित होते हैं। इसी प्रकार निषिद्ध-कर्मों की निन्दा भी की गई है। जिससे यजमान निषिद्ध-कर्म न करें। "अमेध्या वै माषाः"। (तै. सं. 5.1.8.1) इस वाक्य के कारण यज्ञ में उड़द का प्रयोग कभी भूलकर भी न करें, क्योंकि इससे हानि होती है।

विद्वानों से निवेदन है कि वैदिक साहित्य, स्मृति, पुराण एवं आगम की विभिन्न शाखाओं में कथित फलश्रुति के कथन के तात्पर्य को पाठकों तक पहुँचायें ताकि उनके उन्नके सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्तियाँ दूर हो सके।

***

योग की सनातन बहुमुखी धारा

श्री राधा किशोर झा

विशेष सचिव, भारतीय प्रशासनिक सेवा, (अ.प्रा.) क्वांटम डीएनआर. एपार्टमेंट, फ्लैट सं. 305, 70 फीट बाइपास, विष्णुपुर, पकरी 35 फीट, बिहार डिजिटल वर्ल्ड के पास, द्वारकापुरी, पटना-800002

शास्त्रीय दृष्टि से योग का नाम लेते ही पतंजलि के नाम पर उपलब्ध पातंजल-योगसूत्र का स्मरण हो उठता है। पतंजलि को यदि हम महाभाष्यकार पतंजलि से अभिन्न भी मानें तो ईसापूर्व दूसरी शती में उनका काल निर्धारित है। अब प्रश्न उठता है कि क्या योग के सिद्धान्त तथा व्यहार पक्ष इसी काल में प्रवर्तित हुए? तब हमें पतंजलि से पूर्व की योग-परम्परा को देखने की जिज्ञासा होती है। इसके अवलोकन से स्पष्ट होता है कि वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, आरण्यक, कतिपय स्मृति-ग्रन्थ विशेषतः मनुस्मृति, महाभारत आदि पतंजलि से पूर्व के ग्रन्थों में योग का पर्याप्त विवेचन हुआ है और उसी परम्परा को समेकित रूप से पातंजल योगसूत्र में समेटा गया है। इतना ही नहीं, यही परम्परा परवर्ती, पुराणों तथा आगमों में विविध पारिभाषिक शब्दावली केसाथ वर्णित हुई है। इस प्रकार, भारतीय साहित्य में योग की पुष्ट परम्परा विद्यमान है।

प्राचीन काल से योग का महत्त्व हमारे सनातन धर्म में अन्यतम रहा है। श्रुति द्वारा प्रतिपादित जो चरम सत्य है, उसकी अनुभूति योग के बिना सम्भव नहीं है। 'गीता' में भक्तियोग, ज्ञानयोग कर्मयोग एवं ध्यानयोग का उल्लेख किया गया है। बौधायन ने अपने धर्मसूत्र में लिखा है– "योग से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है, योग ही धर्म का सार है॥ सभी गुण योग से ही उत्पन्न होते हैं; अतएव सदैव योग का अभ्यास करना चाहिए"।[1]

आपस्तम्ब ऋषि ने अपने 'धर्मसूत्र' में स्पष्ट किया है कि इस जीवन में क्रोध, हर्ष, रोष, लोभ, मोह, दम्भ, द्रोह, असत्य भाषण, अतिभोजन, दूसरे पर मिथ्या दोष लगाना, दूसरे के गुणों से जलना, इन्द्रियों को वश में न रखना, मन को समाहित न करना– ये प्राणियों का विनाश करनेवाले दोष हैं और ये दोष योग के माध्यम से ही समाप्त होते हैं।[2]

'याज्ञवल्क्य स्मृति' के अनुसार– यजन, सदाचार, दम, (इन्द्रिय-निग्रह), अहिंसा, दान और वेदाध्ययन– कर्मों में यही श्रेष्ठ धर्म है कि योग के द्वारा आत्म साक्षात्कार कर लिया जाये।[3]

1 बौधायन धर्मसूत्र : 4.1.26.–योगेनावाप्यते ज्ञानं योगो धर्मस्य लक्षणम्। योगमूलाः गुणास्सर्वे तस्माद्युक्तः सदा भवेत्।
2 आपस्तम्ब धर्मसूत्र : 1.8.13.
3 याज्ञवल्क्य स्मृति : 1.8

मनु का कहना है कि योग से इन्द्रिय-समूह को वश में कर तथा मन को संयमित कर शरीर को पीड़ा दिए बिना मनुष्य को सम्पूर्ण पुरुषार्थों की सिद्धि करनी चाहिए।[4] इसी स्मृति में अन्यत्र उल्लेख है कि योग के द्वारा परमात्मा की सूक्ष्मता एवं जीवों के उत्तम और अधम देहों में उत्पत्ति को देखना या विचार करना चाहिए।[5]

राजा को अपने इन्द्रियों पर विजय की प्राप्ति के लिए योग का सम्यक् अनुष्ठान अहर्निश करना चाहिए, क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा को वश में करने में समर्थ हो सकता है।[6]

'गीता' कहती है कि योग कर्म में निपुणता लाता है। अतः योग जानना चाहिए।[7]

'कठोपनिषद्' में योग के बारे में यमराज ने नचिकेता को बतलाया है। इन्द्रियों को अचल रूप में धारण करना ही योग है।[8] अर्थात् मन का अचंचल होना ही योग है। इन्द्रियों को मन में, मन को बुद्धि में, बुद्धि को आत्मा में तथा आत्मा को परमात्मा में लय करने का उपदेश किया गया है।[9] यह लययोग का सूचक है। इसी उपनिषद् में कहा गया है कि जब मन के साथ सभी ज्ञानेन्द्रियाँ स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टारहित हो जाती है, तब इस स्थिति को परम गति कहते हैं। यह चित्तनिरोध की स्थिति का द्योतक है, अतः यह श्लोक भी योग का ही सूचक है।[10]

'मैत्रायणि उपनिषद्' में षडंग योग का विवरण है। प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ऊह, ध्यान और समाधि को योग का अंग बतलाया है।[11] प्राण, इन्द्रियों एवं मन की एकाग्रता, जिसमें सभी भाव परित्यक्त होते हैं, को योग कहा गया है। प्राण तदनन्तर ओम को जिस विधि से यह सब अनेक प्रकार से जुड़ते हैं या स्वयं जुड़ जाते हैं, वह विधि योग कहलाता है।[12]

डा. राधाकृष्णन् इसका अनुवाद करते हुए लिखते हैं–

"Because in this manner he joins the breath, the syllable aum and all the world in its manifoldness or prehaps they are joining, therefore this (process of meditation) is called Yoga."

पतंजलि ने चित्तवृत्ति निरोध को योग कहा है।[13] विष्णुपुराण एवं नारदीय पुराण में जो आत्मप्रयत्नसापेक्ष विशिष्ट मन की गति है उसका ब्रह्म केसाथ संयोग होना ही योग कहा गया है–

आत्मप्रयत्नसापेक्षविशिष्टा या मनोगतिः।
तस्याः ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते॥[14]

याज्ञवल्क्य ने जीवात्मा एवं परमात्मा के संयोग को ही योग कहा है–

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।

गीता, 4.27 में आत्मसंयम को योग कहा गया है। भागवत, 11.20.21 में कहा गया है कि मन को वश में कर लेना परम योग है–

4 मनुस्मृति : 2.100
5 मनुस्मृति : 6.65.–सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः। देहेषु च समुत्पत्तिं उत्तमेष्वधमेषु च॥
6 मनुस्मृति : 7.44
7 गीता : 2.50–तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥
8 कठोपनिषद् : 2.3.11– तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्। अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ 11॥
9 कठोपनिषद् : 1.3.13.
10 कठोपनिषद् : 2.3.10.
11 मैत्रायणि-उपनिषद् : 6.18
12 मैत्रायणि-उपनिषद् : 6.25
13 योगसूत्र : 1.2.
14 विष्णुपुराण : 6.7.31.; नारदीय पुराण : 47.7.

एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः।
हृदयज्ञत्वमन्विच्छन् दम्यस्येवार्वतो मुहुः॥

जैसे सवार घोड़े को अपने वश में करते समय उसे अपने मनोभाव की पहचान कराना चाहता है— अपनी इच्छा के अनुसार उसे चलाना चाहता है और बार बार फुसलाकर उसे अपने वश में कर लेता है, वैसे ही मन को फुसलाकर, उसे मीठी-मीठी बातें सुनाकर वश में कर लेना ही परम योग है।

इसी स्कन्ध में अन्यत्र कहा गया है—

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च
श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः
परो हि योगो मनसः समाधिः॥[15]

दान, स्वधर्म का पालन, नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ व्रत— इन सबका अन्तिम फल यही है कि मन एकाग्र हो जाये, भगवान् में लग जाये। मन का समाहित हो जाना ही योग है।

योग शब्द 'युज्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगने से निष्पन्न होता है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार युज् धातु तीन गणों में पाया जाता है—

1. युज् समाधौ धातु, दिवादिगण, आत्मनेपदी।
2. युजिर् योगे धातु, रुधादि गण में उभयपदी
3. युज् संयमने धातु, चुरादिगण, परस्मैपदी।

इन तीनों धातुओं से अलग अलग बने 'योग' शब्द का अर्थ क्रमशः 1. समाधि, 2. जोड़, और संयमन होता है। वेद वाङ्मय, महाभारत, गीता एवं मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में तीनों अर्थों वाले योग शब्द का प्रयोग होता रहा है।

इन्द्रियों एवं मन के संयम व साथ ही मन को परमात्मा/ईश्वर/ब्रह्म में लगाने से समाधि की प्राप्ति होती है। इस तरह ये तीनो परस्पर भिन्न नहीं बल्कि इन्द्रिय एवं मन का संयम तथा मन का परमात्मा/ईश्वर में जुड़ाव (लगाव) परस्पर पूरक हैं। गीत कहती है कि हे अर्जुन, ये प्रमथन स्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुषों के मन को भी हठात् हर लेती है। इसलिए साधक को चाहिए कि इन्द्रियों का संयम करते हुए मन को भगवान् में लगावे। जिसकी इन्द्रियाँ वश में है, उसकी ही प्रज्ञा प्रतिष्ठित होती है।[16]

'गीता', 4. 27 में आत्मसंयम को योग कहा गया है।

जब निरन्तर योग की साधना से चित्त सभी विषयोंसे उपराम होकर निरुद्ध हो जाता है तब वह अपनी आत्मा का साक्षात्कार करता हुआ आत्मा में तुष्ट रहता है। और आत्यन्तिक सुख को प्राप्त करता है।[17]

अर्थात् योग में इन्द्रिय संयम, मन का आत्मा में ध्यान या भक्ति के द्वारा योग होने से तथा ध्यान/भक्ति की प्रगाढ़ता में आत्मा का साक्षात्कार या समाधि होता है।

मैत्रायणि उपनिषद् में इस साधना के छह अंग बतलाये गये हैं— प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, तर्क और समाधि। 'अमृतनादोपनिषद्' में भी यही बात वर्णित है—

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा।
तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते॥

'योगचूड़ामणि-उपनिषद्', 'ध्यानबिन्दूपनिषद्' एवं 'गोरक्ष-पद्धति' में आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि को योग के छह अंग बतलाये गये हैं

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति हि॥[18]

15 भागवत : 11.23.46.
16 गीता : 2.60-61.
17 गीता : 6.20-21
18 योगचूड़ामणि उपनिषद् : 2; ध्यानबिन्दु : 41; गोरक्षपद्धति : 6.

बौद्ध धर्म के 'गुह्यसमाज तन्त्र' में भी प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति, तथा समाधि योग के छह अंग कहे गये हैं–

प्रत्याहास्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा।
अनुस्मृतिः समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते॥[19]

'वायु-पुराण' में प्राणायाम, ध्यान, धारणा, तथा स्मरण क योग का पंचांग माना गया है–

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा।
स्मरणं चैव योगेऽस्मिन् पञ्चधर्माः प्रकीर्तिताः॥[20]

यहाँ समाधि को भी ध्यान में ही समाहित कर लिया गया है, क्योंकि समाधि भी एक प्रकार का ध्यान ही है।[21]

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, एवं ध्यान का उल्लेख एक साथ एक श्लोक में हुआ है, जो काफी प्राचीन है–

प्राणायामैर्दहेद् दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्॥[22]

भागवत पुराण (3.28.11), वायुपुराण (10.12.), मार्कण्डेय पुराण (36.10) में यह यथावत् पाया जाता है। मार्कण्डेय पुराण एवं वायु पुराण में **संसर्गान्** के स्थान पर **विषयान्** शब्द का प्रयोग हुआ है। परन्तु इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता है।

अमृतनादोपनिषद्, वायुपुराण, मार्कण्डेय पुराण, भागतव् की अपेक्षा मुनस्मृति अति प्राचीन ग्रन्थ है। यह पतंजलि योग सूत्र से भी प्राचीन है। इससे स्पष्ट होता है कि योगविद्या हमारी संस्कृति में अति प्राचीन काल से प्रचलित थी।

अब हम देखेंगे कि योग के इन अंगों का वर्णन वेद -वाङ्मय, गीता, उपनिषद्, ब्राह्मण आदि में किस प्रकार से किया गया है तथा इसका तात्पर्य क्या है? इसकी विधि क्या है?

आसन

'श्वेताश्वतर उपनिषद्', 'गीता', तथा 'ब्रह्मसूत्र' में आसन का उल्लेख है। ब्रह्मसूत्र, 4.1.7) "आसीनः सम्भवात्" में कहा गया है कि बैठकर उपासना करनी चाहिए। ध्यान के लिए भी आसन आवश्यक है।[23] श्वेताश्वतरोपनिषद् (2.8) में उल्लेख है–

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरम्
हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान्
स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि॥

ब्रह्मप्राप्ति के लिए ध्यान करनेवाले को चाहिए कि सिर, ग्रीवा और छाती– इन तीनों को उठाए हुए शरीर को सीधा और स्थिर करके समस्त इन्द्रियों को मन के द्वारा हृदय में निरुद्ध करके ॐकार रूप नौका द्वारा समस्त भयदायक जन्मान्तर रूप स्रोतों को तर जाये।

गीता में भी यही बात कही गयी है–

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तोयुक्त आसीत मत्परः॥[24]

काया, शिर और ग्रीवा को सम और अचल कर धारण किए हुए, स्थिर होकर अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि लगाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ निर्भय होकर, भली-भाँति विक्षेप रहित, शान्तचित्त एवं ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित रहते हुए मन को वश में करके, मुझमें चित्त लगाए हुए, मुझे ही अपना परम प्राप्य मानकर साधन करने के लिए बैठें।

अतः योग के लिए आसन, आवश्यक है। आसन के 9 प्रकार का उल्लेख किया गया है। इनमें पद्मासन,

19 गुह्यसमाजतन्त्र : 18.140.
20 वायुपुराण : 10.76
21 द्रष्टव्य– योगसूत्र : 3.3.
22 मनुस्मृति, 6.90.
23 ब्रह्मसूत्र : 4.1.8
24 गीता : 6. 13-14.

भद्रासन, वीरासन एवं सुखासन सुगम हैं, जिसे आसानी से सिद्ध किया जा सकता है।

प्राणायाम

प्राण पर संयम करने की हल्की झाँकी 'शांखायन ब्राह्मण' में मिलता है— यज्ञ करते समय अनेक स्थलों पर मन्त्रों के उच्चारण से चार बार श्वास लेने (3.7), विना श्वास लिए आहुति देने (13.5, 18.5) एक पद तथा दूसरे पद के बीच श्वास ग्रहण न करने (23.6), तथा प्रातःसवन के अन्तर्गत याज्या मन्त्रों के पाठ के अवसर पर बिना श्वास लिए यजन करने का उल्लेख (28.7) मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि ऋषि प्राण के संयम की महत्ता से परिचित थे।

प्राण के निरोध को प्राणायाम कहा जाता है। बौधायन धर्मसूत्र, विष्णुधर्मसूत्र और वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार यदि प्राणवायु को रोककर व्याहृतियों औकार तथा शिरस् के साथ गायत्री मन्त्र का तीन बार जप करे तो एक प्राणायाम होता है।

सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं सिरसा सह।
त्रिःपठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते॥[25]

अर्थात्, "**ॐ भूः। ॐभुवः। ॐ स्वः। ॐ महः। ॐ जनः। ॐ तपः। ॐ सत्यं। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवस्वरोम्।**" इस मन्त्र का तीन बार जप प्राणवायु को रोककर करने से एक प्राणायाम होता है।[26]

प्राणायाम की कई विधियाँ शास्त्र में वर्णित हैं, उनमें से 'योगतत्त्व-उपनिषद्' से सुलभ एवं सुकर प्राणायाम की एक-दो विधियाँ इस प्रकार हैं—

ऋजुकायः प्राञ्जलिश्च प्रणमेदिष्टदेवताम्।
ततो दक्षिणहस्तस्य अङ्गुष्ठेनैव पिङ्गलाम्॥36

शरीर को सीधा रखकर, हाथ जोडते हुए इष्टदेवता को प्रणाम करे, तत्पश्चात् दायें हाथ के अंगूठे से पिंगला को दबाकर शनैः शनैः वायु को भीतर की ओर खींचे तथा उसे यथाशक्ति रोककर कुम्भक करे।

निरुद्ध्य पूरयेद् वायुमीडया तु शनैः शनैः।
यथाशक्त्याविरोधेन ततः कुर्याच्च कुम्भकम्॥ 37॥
पुनस्त्यजेत् पिंगलया शनैरेव न वेगतः।
पुनः पिङ्गलयापूर्यं पूरयेदुदरं शनैः॥38॥
धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदीडया शनैः।
यया त्यजेत् तयापूर्यं धारयेदविरोधतः॥39॥

तत्पश्चात् पिङ्गला द्वारा उस वायु को सामान्य गति से बाहर निकाल देना चाहिए। इसके बाद पिंगला से वायु को पेट में पुनः भरकर शक्ति के अनुसार ग्रहण कर रेचक करे। इस प्रकार जिस तरफ के नथुने से वायु ग्रहण करे, उसी तरफ से पुनः भरकर दूसरे नथुने से बाहर निकालता रहे।

शाण्डिल्य-उपनिषद् 7.1. में भी यह विधि वर्णित है।

प्राणायाम की दूसरी विधि यह है कि सर्वप्रथम ईडा से सोलह मात्रा तक वायु को खींचे, तथा चौंसठ मात्रातक कुम्भक करे और इसके बाद बत्तीस मात्रा तक पिंगला नाड़ी से रेचक करे। इस के बाद दूसरी बार पिंगला नाड़ी से वायु को खींचकर पहले की भाँति ही क्रिया करे। (41-42)

इस स्थल पर मात्रा को समय की एक ईकाई माना गया है, जिसकी शास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार दी गयी है

जानुं प्रदक्षिणीकृत्य न द्रुतं न विलम्बितम्।
अङ्गुलिस्फोटनं कुर्यात् सा मात्रा परिगीयते।।

न तो अत्यधिक तेजी न अत्यन्त धीरे धीरे वरन् सामान्य गति से जानु की प्रदक्षिणा करके चुटकी बजाये, इतने समय को एक मात्रा कहा जाता है।

25 बौधायन धर्मसूत्र : 4.1.28; विष्णुधर्मसूत्र : 55.9; वसिष्ठधर्मसूत्र : 25.13; अमृतनादोपनिषद् : 11.
26 द्रष्टव्य तैत्तिरीय आरण्यक—10.27.1 का सायण भाष्य एवं आश्वलायन गृह्यसूत्र : 1.(2)

प्राणायाम के दौरान भोजन के सम्बन्ध में निर्देश दिया गया है कि नमक, तेल, खटाई, रूखा, तीक्ष्ण भोजन, हरे साग, हींग आदि मसाला, आग तापना, स्त्री-प्रसंग करना, अधिक चलना, प्रातःकाल का स्नान, उपवास तथा अपने शरीर को पीड़ा पहुँचाने वाले कार्य को प्रायः त्याग देना चाहिए। अभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था में दुग्ध, घृत, का भोजन श्रेष्ठ है। (47-48) गेहूँ, मूँग एवं चावल का भोजन योग में वृद्धि प्रदान करने वाला बतलाया गया है। इस प्रकार अभ्यास करने से वायु को इच्छानुसार धारण करमे की शक्ति प्राप्त हो जाती है। (49)

ये बातें योगतत्त्व-उपनिषद् से उद्धृत की गयी हैं। 16, 64 एवं 32 मात्रा के पूरक, कुम्भक एवं रेचक करने की विधि शाण्डिल्य-उपनिषद् (6.5) में भी वर्णित है।

प्राणायाम के बारे में गीता, 4.29. का निम्न श्लोक ध्यातव्य है–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः॥

दूसरे कितने योगीजन अपान वायु में प्राणवायु को हवन करते हैं और प्राणवायु में अपान वायु को हवन करते हैं तथा अन्य योगीजन प्राण-अपान की गतियों को रोककर प्राणायाम में (अर्थात् कुम्भक) में तल्लीन हो जाते हैं।

'शाण्डिल्य उपनिषद्' में प्राणायाम की दो अन्य सुलभ विधियाँ कही गयी हैं–

वक्त्रेण सीत्कारपूर्वकं वायुं गृहीत्वा यथाशक्ति कुम्भयित्वा नासाभ्यां रेचयेत्। तेन क्षुत्-तृष्णालस्यनिद्रा न जायते।[27]

मुख के द्वारा सीत्कारपूर्वक अर्थात् सी-सी करते हुए वायु को अन्दर भरकर यथाशक्ति कुम्भक करे तत्पश्चात् नासिका छिद्रों से रेचक की क्रिया करे। इससे भूख-प्यास, आलस्य अथवा निद्रा का प्रादुर्भाव नहीं होता है।

जिह्वया वायुं गृहीत्वा यथाशक्ति कुम्भयित्वा नासाभ्यां रचयेत्। तेन गुल्फ-प्लीह-ज्वर-पित्त-क्षुधादीनि नश्यन्ति।[28]

अर्थात् जिह्वा के द्वारा वायु को अन्दर खींचकर यथाशक्ति कुम्भक कर दोनों नासिका द्वारा रेचक करना चाहिए। इससे गुल्म, तिल्ली बढ़ जाना, ज्वर, पित्त जनित रोग और भूख आदि का शमन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त प्राणायाम की कई अन्य विधियाँ एवं फल शाण्डिल्य उपनिषद्, जाबाल दर्शनोपनिषद् तथा योगतत्त्वोपनिषद् में कहे गये हैं। पाठक इसे पढ़कर अनुपालन यथाशक्ति कर सकते हैं।

प्रत्याहार

प्रत्याहार की परिभाषा देते हुए पतंजलि ने योगसूत्र 2.54 में लिखा है–

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

अपने (अर्थात् इन्द्रियों के) विषय के साथ सन्निकर्ष न होने पर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप का अनुकरण-सा कर लेना प्रत्याहार है।

प्रत्याहार के बारे में जाबालदर्शनोपनिषद्, 7.1-4 में बहुत अच्छा अनुकरणीय वर्णन आया है उसे यथावत् प्रस्तुत किया जा रहा है।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारं महामुने।
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः॥1॥
बलादाहरणं तेषां प्रत्याहारः स उच्यते।
यत्पश्यति तु तत्सर्वं ब्रह्म पश्यन्त्समाहितः॥2॥

27. शाण्डिल्य उपनिषद् 6.13.3
28. शाण्डिल्य उपनिषद्, 7.13.4

प्रत्याहारो भवेदेष ब्रह्मविद्भिः पुरोदितः।
यद्यच्छुद्धमशुद्धं वा करोत्यामरणान्तिकम्॥3॥
तत्सर्वं ब्रह्मणे कुर्यात्प्रत्याहारः स उच्यते।
अथवा नित्यकर्माणि ब्रह्माराधनबुद्धितः॥4॥

हे महामुने! अब मैं प्रत्याहार का वर्णन करता हूँ। विषय भोगों में स्वभाववश विचरण करनेवाली समस्त इन्द्रियों का बलात् वहाँ से वापस लाने का प्रयत्न है, उसी को प्रत्याहार कहते हैं। मनुष्य जो कुछ भी देखता है, वह सब ब्रह्म है, इस प्रकार समझते हुए ब्रह्म में चित्त को एकाग्र कर लेना ही प्रत्याहार है, ऐसा ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं। मनुष्य मृत्युपर्यन्त जो कुछ भी पवित्र अथवा अपवित्र कार्य करता है, वह सभीकुछ परमात्मा को समर्पित कर देना चाहिए, यह भी प्रत्याहार कहा गया है अथवा नित्य एवं काम्य सभी प्रकार के कर्मों को भगवान् की सेवा-प्रार्थना के भाव से करना चाहिए, यह भीप्रत्याहार है।

ठीक इसी प्रकार का वर्णन शाण्डिल्य उपनिषद् (8.1) में भी किया गया है।

इसी जाबालोपनिषद् में अन्यत्र 7.13-14 में कहा गया है—

देहे स्वात्ममतिं विद्वान्समाकृष्य समाहितः।
आत्मनात्मनि निर्द्वन्द्वे निर्विकल्पे निरोधयेत्॥13॥
प्रत्याहारः समाख्यातः साक्षाद् वेदान्तवेदिभिः।
एवमभ्यसतस्तस्य न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥14॥

ज्ञानी पुरुष चित्त को एकाग्र करके शरीर से आत्मबुद्धि को अलग कर उसे खुद ही निर्द्वन्द्व एवं निर्विकल्प स्वरूप में अपने अन्तरात्मा में स्थित करे। वेदान्त तत्त्व के ज्ञाता विद्वानों ने इसी को ही वास्तविक प्रत्याहार कहा है। इस प्रत्याहार को अभ्यास करनेवाले मनुष्य के लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं है।

'अहिर्बुध्न्य संहिता' 32.56-57 में प्रत्याहार की साधना बलतायी गयी है वह अनुष्ठान करने योग्य है—

प्रत्याहारं ततः कुर्यादङ्गैः पञ्चभिरन्वितम्।
स्वभावेनेन्द्रियार्थेषु प्रवृत्तं मानसं बुधैः॥56॥
तद्दोषदर्शनात् तेभ्यः समाहृत्य बलेन तु।
निवेशनं भगवति प्रत्याहार इति स्मृतः॥57॥

प्राणायाम के अनन्तर पाँच अंगों से युक्त प्रत्याहार करे। पुरुष स्वभाव से इन्द्रियों में (इन्द्रियों के तत्-तद्-विषय रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द) प्रवृत्त मन को उन विषयों में दोष दर्शन करते हुए उससे अलग हटावे। इस प्रकार विषयों से मन को पृथक् हटाकर ईश्वर में प्रतिस्थापित कर दे इसे प्रत्याहार कहते हैं।

गीता में प्रत्याहार शब्द का स्पष्ट रूप से प्रयोग नहीं हुआ है, परन्तु अधोलिखित श्लोक स्पष्ट रूप से प्रत्याहार को द्योतित करता है—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥[29]

जिस प्रकार कछुआ सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, उसी प्रकार जब पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। इसकी पुष्टि वायु-पुराण के निम्नलिखित श्लोक से होता है, जिसमें प्रत्याहार शब्द का स्पष्ट उल्लेख है—

यस्तु प्रत्याहरेत् कामान् कूर्मोङ्गानीव सर्वतः।
तथात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि॥[30]

कछुआ जिस प्रकार अपने शरीर का आकुंचन करता है, उसी प्रकार योगी सम्पूर्ण कामों से अर्थात् विषयों से मन को हटाकर एकस्थ होकर आत्मरति करे। आत्मा में सबका निरोध करे। ऐसा ही ठीक करने से योगी आत्मा का दर्शन कर लेता है। ऐसा ही कथन महाभारत के शान्तिपर्व, राजधर्मानुशासन, अध्याय 26

29. गीता : 2.5
30. वायु-पुराण : पूर्वार्द्ध, 11.19.

में ययाति की गाथा के रूप में आया है जहाँ प्रत्याहार के फल का स्पष्ट कथन है–

याभिः प्रत्याहरेत् कामान् कूर्मोङ्गानीव सर्व्वशः।
यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥

कछुआ द्वारा अंग संकोच का यह दृष्टान्त हरिवंश-पुराण में भी आया है, जहाँ निम्नलिखित प्रसिद्ध सूक्ति भी इसी सन्दर्भ में है–

याभिः प्रत्याहरेत्कामान् सर्वतोऽङ्गानि कूर्मवत् ॥37॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥38॥[31]

ययाति द्वारा उक्त गाथा के रूप में यह ब्रह्मपुराण (12.39-40), लिङ्ग पुराण (1.67.15-16) में भी आया है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में जो उपरति का वर्णन (4.4.3.) में पाया जाता है, वह प्रत्याहार ही है। शंकर ने 'विवेक-चूड़ामणि' में उपरति की परिभाषा देते हुए कहा है कि लीन हुई इन्द्रियों का पुनः उत्पन्न न होना यह उपरति की सीमा है।[32]

पतंजलि का कथन है कि प्रत्याहार से इन्द्रियों की परम वश्यता हो जाती है। (2.55)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्याहार हमारे वैदिक वाङ्मय में उपरति के रूप में गीता, 2.58. एवं मनुस्मृति, 6.59 में लक्षण के अनुसार प्रयुक्त हुआ है। यह ध्यान/समाधि का प्रमुख अंग है, यद्यपि योगसूत्र, 3.7 के आलोक में बहिरंग साधन है। मनुस्मृति, वायु पुराण, मार्कण्डेय पुराण एवं भागवत पुराण के आलोक में प्रत्याहार की साधना से विषयों के प्रति आसक्ति का नाश हो जाता है।[33]

धारणा

प्रत्याहार के फलस्वरूप जब चित्त बाह्य विषयों से हटता है तो कहीं उसे स्थापित तो करना होगा! और चित्त को बाह्य विषयों से हटाकर किसी बाह्य या अन्तःविषयों पर स्थित करना ही योगसूत्र, 3.1 में धारणा कही गयी है।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा॥

इसकी व्याख्या करते हुए व्यास लिखते हैं कि नाभिचक्र में, हृदयकमल में शीर्ष प्रकाश में, नासिका के अग्रभाग में, जिह्वा के अग्रभाग में–इस प्रकार (आन्तरिक देशों में या बाहरी वस्तुओं देवमूर्ति आदि में चित्त को वृत्तिमात्र से बाँधना धारणा है।[34]

अहिर्बुध्न्य संहिता में धारणा की सुन्दर व्याख्या मिलती है–

विषयेषु च वैराग्यादभ्यासाद् गुणदर्शनाः।
परमात्मनि संरोधो मनसो धारणा स्मृता॥[35]

मन से विषयों में वैराग्य का अभ्यास करे तथा परमात्मा में गुण का दर्शन करे। तदनन्तर उसे परमात्मा में लगाबे। तब मन की इस प्रक्रिया को विद्वज्जन धारणा कहते हैं।

विष्णु पुराण में, सम्पूर्ण जगत् भगवान् का स्थूल रूप कहा गया है,[36] यह विचार शुद्ध धारणा कहा गया है। **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"**[37] यह सब कुछ ब्रह्म है यह भाव स्थिर करना धारणा हुई। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है– "सब लोकों को मैने अपने आत्मा में धारण का

31. हरिवंश : पर्व 1, अध्याय 30 श्लोक 37-38.
32. विवेक चूड़ामणि : श्लोक 425.–वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य परोऽवधिः। अहंभावोदयाभोवो बोधस्य परमोऽवधिः। लीनवृत्तेरनुत्पत्तिर्मर्यादोपरतेस्तु सा॥ 425॥
33. मनुस्मृति : 6.92
34 योगसूत्र व्यासभाष्य : 3.1
35 अहिर्बुध्न्य संहिता : 32.58, एम.डी. रामानुजाचार्य (सम्पादक), अड्यार, 1916, खण्ड II, पृ. 306
36 विष्णु पुराण : 6.7.55, 73,75.
37 छान्दोग्य उपनिषद् : 3.14.1.

और सब लोकों में अपने आत्मा को। सब देवों को आत्मा में धारण किया और सब देवों में आत्मा को। सब वेदों में आत्मा को तथा सब वेदों को आत्मा में धारण किया। सब प्राणों को अपने आत्मा में धारण किया और सब प्राणी में अपने आत्मा को। लोक अक्षय है, वेद अक्षय है, प्राण अक्षय है, सब कुछ अक्षय है।"[38] यह अवतरण धारणा का स्पष्ट उदाहरण है।

जाबालदर्शनोपनिषद् में धारणा के विषय में उल्लेख है—

अथातः संप्रवक्ष्यामि धारणाः पञ्च सुव्रत।
देहमध्यगते व्योम्नि बाह्याकाशं तु धारयेत्॥1॥
प्राणे बाह्यानिलं तद्वज्ज्वलने चाग्निमौदरे।
तोयं तोयांशके भूमिं भूमिभागे महामुने॥2॥
हयवरलकाराख्यं मन्त्रमुच्चारयेत्क्रमात्।
धारणैषा परा प्रोक्ता सर्वपापविशोधिनी॥3॥

हे सुव्रत, अब मैं तुम्हारे लिए पंच धारणा के सम्बन्ध में बतलाता हूँ। अपने शरीर के मध्य में जो आकाश तत्त्व स्थित है, उसमें बाह्याकाश की धारणा करनी चाहिए। इसी प्रकार, प्राण में बाह्य वायुतत्त्व की, जठरानल में बाह्य अग्नितत्त्व की, देहगत जल के अंश में बाह्य जल तत्त्व की एवं शरीर के पार्थिव तत्त्व में बाह्य पृथ्वी की धारणा करनी चाहिए तथा हर एक तत्त्व की धारणा के समय हं, यं, वं, रं, लं, —इन बीज मन्त्रों का उच्चारण करें। इस धारणा को सर्वोत्तम बताया गया है। यह पापों का नाश करनेवाली है। इस प्रकार का वर्णन मनुस्मृति (12.120-121.) में भी आया है— "शरीर के छिद्रों में आकाश की, शरीर की वायु में वायु की, उदर तथा नेत्रों के तेज में तेजस् की, देह के जल में जल की, देह के पार्थिव भाग में पृथ्वी की, मन मे चन्द्रमा की, कान में दिशाओं की, पैर में विष्णु की, बल में हर की, वाणी में अग्नि की, गुदा में मित्र की और उपस्थ में प्रजापति की एकता की भावना करे।" यह भावना धारणा ही है।

तर्क

मैत्रायणि उपनिषद्, 6.18 में षडङ्ग योग में एक अंग तर्क भी है। अतः तर्क पर विचार किया जा रहा है। बृहदारण्यक उपनिषद् 4.5.6 में कहा गया है— **"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेद सर्वं विदितम्॥"**

अर्थात् हे मैत्रेयि यह आत्मा ही दर्शन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने योग्य है। इस आत्मा के दर्शन, श्रवण, मनन और ज्ञान से सभी का ज्ञान हो जाता है। इसी तरह का वर्णन इसी उपनिषद् में 2.4.5 में भी आया है। बृहदारण्यक-उपनिषद् के इस स्थल की व्याख्या में आचार्य शंकर लिखते हैं— अतः हे मैत्रेयी, आत्मा ही द्रष्टव्य— दर्शन करने योग्य है अर्थात् साक्षात्कार का विषय है। पहले यह आचार्य और शास्त्र के द्वारा श्रवण करने योग्य है, इसके पश्चात् मन्तव्य अर्थात् तर्क के द्वारा मनन करने योग्य है। इसके पश्चात् वह निदिध्यासन अर्थात् निश्चय से ध्यान करने योग्य है। क्योंकि इस प्रकार श्रवण, मनन और निदिध्यासन रूप साधनों के सम्पन्न होने पर ही साक्षात्कार करने योग्य होता है। जिस समय इन साधनों की एकता होती है, उसी समय ब्रह्मैकत्व विषयक सम्यक् दर्शन का प्रसार होता है। अन्यथा केवल श्रवण मात्र से उसकी स्फुटता नहीं होती है। आचार्य मण्डन मिश्र ने भी ब्रह्मसिद्धि के ब्रह्मकाण्ड में जन्म-जन्मान्तर के पड़े हुए संस्कार को दूर करने हेतु मन्तव्य निदिध्यासितव्य की उपयोगिता स्वीकार किया है।

मैत्रायणि-उपनिषद्, 6.20. में उल्लेख है कि **ब्रह्म तर्केण पश्यति।** ब्रह्म को तर्क के द्वारा देखता है। यहाँ

38 शतपथ ब्राह्मण : 12.3.4.11.—"एतेन मन्त्रजपेन च सर्वाल्लोकान्सर्वान्देवान्सर्वान्वेदान्सर्वान् प्राणांश्चात्मन्यधिषि-आत्मानं च तेषु सर्वेषु अधाम्-तथैतेनान्योऽन्यधारणेन सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वे वेदाः सर्वे प्राणा अक्षीणाः सर्वं चाक्षीणमिति"

तर्क आगम अथवा आचार्य के कथन के श्रवण के मनन का द्योतक है। तर्क को ऊह कहते हैं। रामानुजाचार्य ने ऊह का अर्थ गीता भाष्य, श्लोक संख्या 15.15 में इस प्रकार दिया है– ऊह– यह प्रमाण इस प्रकार प्रयुक्त किया जाना चाहिए।– ऐसा जो प्रमाण प्रवृत्ति की योग्यता को विषय करने वाला है और सामग्री आदि के निरूपण से उत्पन्न होनेवाला है उस प्रमाणज्ञान के सहायक ज्ञान का नाम ऊह है।

अर्थात् ऊह या तर्क ध्यान के निश्चय करने में अत्यन्त सहायक है। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि जो वेद धर्मोपदेश को वेदशास्त्रानुकूल तर्क के द्वारा विचारता है वही धर्म को जानता है। (मनुस्मृति, 12.106.) आचार्य शंकर ने ब्रह्मसूत्र, 2.1.11 की व्याख्या में इस श्लोक को उद्धृत करते हुए कहा है कि वेदानुकूल तर्क ग्राह्य है, उपयोगी है; अतः ध्यान हेतु वेदानुकूल तर्क आवश्यक है।

ध्यान एवं समाधि

ध्यान शब्द का व्यवहार वैदिक संहिता से अब तक अनवच्छिन्न रूप से होता आ रहा है। ऋग्वेद के मन्त्र (3.62.10.), 5.82.1,6) में **'धीमहि'** शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ भाष्यकार सायण ने अपने भाष्य में **'वयं ध्यायामः'**– अर्थात् हम ध्यान करते हैं– किया है। ऋग्वेद के मन्त्र 2.28.2 में **'स्वाध्यः'** शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ सायण ने 'शोभनाध्यानाः' किया है। ऋग्वेद के मन्त्र 5.82.8 में **'स्वाधी'** शब्द का अर्थ 'शोभनाध्यानः' किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण 1.5.2.19 में 'ध्यान' शब्द का प्रयोग हुआ है। उपनिषत् साहित्य में भी ध्यान शब्द का प्रयोग कतिपय स्थलों पर हुआ है। छान्दोग्य उपनिषद् (7.6.1-2; 6.22.2.; 1.3.12) प्रश्नोपनिषद् (5.1,3,5), श्वेताश्वतरोपनिषद् (1.3,10,14), बृहदारण्यक उपनिषद् (4.4.21.) तथा मुण्डकोपनिषद् (2.2.6.) में ध्यान शब्द आया है। वेद और उपनिषद् में उपासना शब्द का प्रयोग अधिक हुआ है, यह भी ध्यान का पर्याय है। बृहदारण्यक उपनिषद् (4.5.6) में निदिध्यासन शब्द ध्यान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[39]

बृहदारण्यक उपनिषद् में समाहित शब्द का प्रयोग हुआ है जो समाधि अथवा ध्यान का वाचक है।[40] समाधि ध्यान की ही एक अवस्था है (योगसूत्र, 3.3.) बौद्ध धर्म के मज्झिम निकाय के भयभैरवसुत्त एवं अन्यत्र कतिपय स्थानों पर प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान, चतुर्थ ध्यान का वर्णन पाया जाता है। यह शब्द जैन धर्म के तत्त्वार्थसूत्र (9.20, 9.27, 9.29, तथा 9.30 में प्रयुक्त हुआ है।

समाधि

ध्यान/समाधि की सिद्धि के लिए ही यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा अथवा तर्क की आवश्यकता है। विष्णुपुराण में कहा गया है– हे राजन्, जिसमें परमेश्वर के रूप की ही प्रतीति होती है, ऐसी जो विषयान्तर की स्पृहा से रहित एक अनवरत धारा है, उसे ही ध्यान कहते हैं। यह अपने से पूर्व यम, नियमादि छह अंगों से निष्पन्न होता है।

तद्रूपप्रत्यया चैका सन्ततिश्चान्यनिःस्पृहा।
तद्ध्यानं प्रथमैरङ्गैः षड्भिर्निष्पाद्यते नृप॥ 91॥
तस्यैव कल्पनाहीनं स्वरूपग्रहणं हि यत्।
मनसा ध्याननिष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते॥ 92॥[41]

उस ध्येय पदार्थ का ही जो मन के द्वारा ध्यान से सिद्ध होने योग्य कल्पनाहीन (ध्याता, ध्येय और ध्यान

39 बृहदारण्यक उपनिषद् : शांकर भाष्य, 2.4.5.
40 बृहदारण्यक-उपनिषद् : शांकर भाष्य, 4.4.23.–समाहितः–इन्द्रियान्तःकरणचलनरूपाद् व्यावृत्या एकाग्ररूपेण समाहितो भूत्वा...।
41 विष्णुपुराण : 6.7.91-92

"प्रत्याहार के पश्चात् जब चित्त बाह्य विषयों से विमुख होकर अन्तर्मुख होता है तो उसे कहीं पर स्थिर करना धारणा है। परन्तु यह स्थिति अल्पकालिक होती है। इसे स्थिर करने के लिए बार बार ध्येय का चिन्तन करना पड़ता है, वहीं ध्यान कर लाता है।"

भेद से रहित) स्वरूप ग्रहण किया जाता है, उसे ही समाधि कहते हैं।

ध्यान एवं समाधि के सम्बन्ध में योगसूत्र, 3.2. एवं 3.3. में क्रमशः चर्चा की गयी है। इनके पूर्व सूत्र 3.1. में धारणा की परिभाषा है– **देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।** अर्थात् किसी देश (बाह्य अथवा अन्तः) में चित्त की वृत्तियों को बाँधना धारणा है। प्रत्याहार के पश्चात् जब चित्त बाह्य विषयों से विमुख होकर अन्तर्मुख होता है तो उसे कहीं पर स्थिर करना धारणा है। परन्तु यह स्थिति अल्पकालिक होती है। इसे स्थिर करने के लिए बार बार ध्येय का चिन्तन करना पड़ता है, वहीं ध्यान कर लाता है। इसीको स्पष्ट करते हुए पतञ्जलि कहते हैं–

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्॥

उस देश में विचार (चित्तवृत्ति) की एकतानता अर्थात् सजातीय प्रवाह ही ध्यान है। या यूँ कहें कि ध्येय के प्रति चित्त की एकाग्रता ध्यान है। इसे ही बौद्ध धर्म के 'मज्झिम निकाय' में समाधि कहा गया है–

या खो आवुस विसाख चित्तस्स एकाग्गता अयं समाधि।[42]

अर्थात् हे आयुष्मान् विशाख, चित्त की एकाग्रता ही समाधि कहलाती है।

'विशुद्धिमग्ग' में समाधि का वर्णन इस प्रकार है, जो व्यावहारिक रूप से समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है–

किस अर्थ में समाधि है? अर्थात् समाधि का क्या अर्थ है? समाधान के अर्थ में समाधि का प्रयोग है। यह समाधान क्या है? एक आलम्बन में चित्त चैतसिकों का एक समान एवं सम्यक् रूप से आधान (टिकाना) करना ही समाधान कहा गया है। इसलिए जिस धर्म के कारण एक आलम्बन से चित्त चैतसिक एक समान एवं सम्यक् रूप से विक्षेप रहित एवं अविप्रकीर्ण (एकजुट) होकर रहते हैं, उसे समाधान समझना चाहिए।[43]

उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि पतंजलि का ध्यान ही बौद्ध धर्म में समाधि रूप से व्यवहृत हुआ है। आचार्य शंकर में उपासना की परिभाषा देते हुए लिखा है– "उपास्य वस्तु (ध्येय वस्तु) को शास्त्रोक्त विधि से बुद्धि का विषय बनाकर उसके समीप पहुँचकर तैलधारा के तुल्य समानवृत्तियों के प्रवाह से जो दीर्घकाल तक उसमें स्थित रहना है, उसे उपासना कहते हैं।"[44] इसी प्रकार ब्रह्मसूत्र भाष्य 4.1.7 में आचार्य शंकर लिखते हैं– **"उपासनं नाम समानप्रत्ययप्रवाहकरणम्।"** अर्थात् समान प्रत्ययप्रवाह को उपासना कहते हैं। स्पष्ट है कि ध्यान बौद्ध धर्म में समाधि तथा वेदान्त में उपासना समान अर्थ का बोधक है।

जैन धर्म के तत्त्वार्थसूत्र, 9.27 में वर्णन है–

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानम्॥

उत्तम संहननवाले का एक विषय में अन्तःकरण की वृत्ति का स्थापन करना ध्यान है। यह पतंजलि के ध्यान की परिभाषा से मिलता है। जैन धर्म में ध्यान चाप

42 मज्झिम निकाय : प्रथम भाग, 44.2.
43 विसुद्धिमग्ग : 3.3. भाग 1, पृ. 117 प.
44 गीता : शांकर भाष्य, 12.3.

प्रकार के कहे गये हैं– आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल। इनमें धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान ही मोक्ष के कारण कहे गये हैं (तत्त्वार्थसूत्र, 9. 29-30) जबकि आर्त्त एवं रौद्र ध्यान लौकिक ध्यान हैं।

ध्यान को और स्पष्ट करते हुए अग्निपुराण में कहा गया है–

ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुर्विष्णुचिन्ता मुहुर्मुहुः।
अनाक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते॥
आत्मनः समनस्कस्य मुक्ताशेषोपधस्य च।
ब्रह्मचिन्तासमा शक्तिर्ध्यानं नाम तदुच्यते॥
ध्येयालम्बनसंस्थस्य सदृशप्रत्ययस्य च।
प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रत्ययो ध्यानमुच्यते॥[45]

अर्थात् चिन्ता करने के अर्थ में ध्यै धातु का प्रयोग होता है। बार-बार एकाग्र मन से विष्णु (इष्टदेव) का चिन्तन करना ध्यान कहलाता है। मन और आत्मा से सभी उपाधियों को छोड़कर ब्रह्मचिन्तन करना ही ध्यान कहलाता है। ध्यानयोग्य अवलम्बन में मन को स्थिर करके अन्य प्रकार की प्रतीति से मुक्त होना ध्यान कहलाता है।

ध्यान की सिद्धि में बाधाएँ

ध्यान की सिद्धि में अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाएँ आतीं हैं, इनका वर्णन योगसूत्र, 1.30 में है जैसे– व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्ध, भूमिकत्व, अनवस्थितत्व।[46]

इन बाधाओं का वर्णन बौद्ध धर्म एवं जैव धर्म के ग्रन्थों में भी मिलता है। ॐ के जप से इन विघ्न-बाधाओं का अन्त हो जाता है।[47] 'भागवत' में ईश्वर की भक्ति से 'अन्तराय' का अन्त कहा गया है। अतः 'योगसूत्र', 2.45 में कहा गया है कि ईश्वर प्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है।

'अग्निपुराण' में कहा गया है कि ध्यान से थक जाने पर जप करना चाहिए, जप करने से थक जाने पर ध्यान करना चाहिए। जप एवं ध्यान से युक्त साधक पर विष्णु शीघ्र प्रसन्न होते हैं।[48] इसी प्रकार, 'गीता' में कहा गया है कि ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है।

जिस साधक के राग-द्वेष एवं मोह क्षीण हो गये हैं वह ध्यानाग्नि द्वारा अपने किए गये शुभाशुभ कर्म को जला देता है।[49] ध्यानाग्नि अपरिमित कृत शुभाशुभ कर्म को जला देती है।[50]

गीता कहती है कि ध्यान से कर्म फल के प्रति आसक्ति का त्याग होता है और त्याग से अथाह शान्ति मिलती है।[51]

अतः ध्यान नित्य रूप से करना चाहिए। यह ध्यान भक्तिमार्ग में निर्गुण भक्ति कहलाता है। 'भागवत' में उल्लेख है–

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिः अविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥[52]

जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति का तैलधारावत् अविच्छिन्न रूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना– यह निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा गया है।

45 अग्निपुराण : 374.1-3.
46 योगसूत्र : 1.30–व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्ति-दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः॥
47 द्रष्टव्य–योगसूत्र : 1.29
48 अग्निपुराण : 374.33.
49 समणसुत्त : गाथा 487
50 समणसुत्त : गाथा, 504
51 गीता : 12.12.
52 भागवत : 3.29.11-12

पत्थर पर उत्कीर्ण समाधिस्थ योगी (13वीं शती) तमिलनाडु

चित्र : साभार www.ancient-origins.net/

ध्यान, उपासना, निर्गुण भक्ति, बौद्ध धर्म की समाधि एवं जैन धर्म का ध्यान लगभग एकसमान हैं। अब पतंजलि योगसूत्र, 3.3. के आलोक में समाधि की विवेचना की जाती है—

तदेवार्थनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः॥

ध्यान करते-करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, उसके अपने स्वरूप का अभाव-सा हो जाता है, उसे ध्येय से भिन्न उपलब्ध नहीं हो तो उस समय उस ध्यान का ही नाम समाधि है।

'पैङ्गलोपनिषत्', 3.4 में समाधि का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

ध्यातृध्याने विहाय निवातस्थितदीपवद्ध्येयैकगोचरं चित्तं समाधिर्भवति॥

जब ध्याता और ध्यान के भाव को छोड़कर चित्तवृत्ति वायुरहित स्थान में रखे दीपके की ज्योति के सदृश केवल ध्येय में स्थिर हो जाती है, तब इस अवस्था को समाधि कहते हैं।

मण्डलब्राह्मणोपनिषत्, 1.10. में कहा गया है कि ध्यान की विस्मृति ही समाधि है— **ध्यानविस्मृतिः समाधिः।**

इसी उपनिषत् में कहा गया है कि सभी शरीरों में एक ही चैतन्य तत्त्व विद्यमान है, इसी एकतानता (निरन्तर चिन्तन) को ध्यान कहा गया है और ध्यान को भी विस्मृत कर देना (भूल जाना) समाधि है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि समाधि ध्यान की प्रगाढ़ अवस्था है। इन योगांगों के अनुष्ठान से चित्त शुद्ध होता है और आत्मज्योति प्रकाशित होती है।[53]

जाबाल दर्शनोपनिषद् में समाधि के बार में कहा गया है कि जीवात्मा एवं परमात्मा के एकत्वभाव से पूर्ण अनुभूति का प्राकट्य ही समाधि है।— **समाधिः संविदुत्पत्तिः परजीवैकतां प्रति।।**

इस प्रकार, योग सनातन धर्म में वेद, उपनिषद्, आरण्यक, महाभारत, आगम, पुराण, तथा इतिहास प्रसिद्ध योगियों के द्वारा इस विषय पर लिखे गये अन्य ग्रन्थों में नदी की धारा के समान सतत प्रवहमान है। बौद्ध तथा जैन दर्शन में भी इसका सूक्ष्मवर्णन आया है जो वैदिक परम्परा के समान ही है। पतंजलि से पहले भी हम योग के अंगों तथा इसके स्वरूप का वर्णन पाते हैं।

***

औपनिषदिक योग

विद्यावाचस्पति महेश प्रसाद पाठक
"गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो–जिला-गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathakmahesh098@gmail.com

योगसूत्र भलें पतंजलि के नाम पर लिखा गये हो, किन्तु उसके सिद्धान्त तथा व्यावहारिक पक्षों का विस्तृत वर्णन हमें उपनिषद् ग्रन्थों में मिलते हैं। इनमें से अपेक्षाकृत नवीन कुल 20 उपनिषद् हैं, जिनमें योग से सम्बन्धित सिद्धान्त तथा व्यावहारिक पक्ष विवेचित हुए हैं। श्रीमद्भगवद्-गीता भी योग का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत करती है, भले वहाँ पारिभाषिक शब्दावली का अभाव है। परवर्ती उपनिषदों में इष्टदेव की भिन्नता के आधार पर धारणा तथा ध्यान के स्तर पर योग की अनेक शाखाएँ हो जाती हैं, जिनका व्यावहारिक प्रतिपादन हमें आगमों का शाखाओं–वैष्णव, शैव, गाणपत्य, शाक्त, सौर, आग्नेय आदि में मिलते हैं। वस्तुतः देखा जाये तो योग के व्यवहारपक्ष के कारण ध्यान की विविधता के स्तर पर भारतीय बहुदेववाद की स्थापना हुई है, जितने साधक हैं, सबके अपने अपने ध्येय हो जाते हैं और एक ही देव विभिन्न नाम-रूपों में पृथक्-पृथक् मान लिए जाते हैं। परवर्ती उपनिषदों ने इस तथ्य को योग के सन्दर्भ में अधिक स्पष्ट किया है, अतः योग की परम्परा के अवलोकन के लिए औपनिषदिक योग का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

उपनिषद हमारे अध्यात्म-विज्ञान की वेधशाला है। वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग वेदान्त कहलाता है। उपनिषद् वेद का चिरप्रदीप्त ज्ञान-काण्ड कहलाता है, जिसके प्रकाश में अमरत्व है, ज्ञान का अक्षय भण्डार है। वेदान्त दर्शन के तीन प्रस्थान हैं– पहला उपनिषद्, दूसरा ब्रह्मसूत्र और तीसरा गीता। इनमें उपनिषद् को श्रवणात्मक, ब्रह्मसूत्र को मननात्मक एवं गीता को निदिध्यासनात्मक कहा गया है। उपनिषद् के तत्त्वोपदेशकों ने जीव और ब्रह्म के प्रति एक्यभाव को दर्शाते हुए कहा है– **जीवो ब्रह्मैव नापरः**। जीव ब्रह्म ही है, यह जीव से कदापि पृथक् नहीं। 'उप' और 'नि' ये दो उपसर्ग और अन्त में 'क्विप' प्रत्यय लगाने से उपनिषद् शब्द बनता है। उपनिषद् का मुख्य अर्थ है– उपासना। अमरकोश में उपनिषद् के लिये– **धर्मे रहस्युपनिषत्**।[1] कहा है, जिसमें उपनिषद् के लिये तीन नाम दिये गये हैं– धर्म, एकान्त एवं वेदान्त।

योग-सिद्धान्त के लिये सर्वप्रथम षड्दर्शनों में से एक महर्षि पतञ्जलिकृत 'योग-दर्शन' का ही आश्रय लिया जाता है, यह इसलिए है कि इसमें योग सम्बन्धित विभिन्न कूट-सिद्धान्त दिये गये हैं। महाभारतोक्त दिव्यमुकुटमणि कहे जानेवाले गीता को भी 'गीतोपनिषद्' कहा गया है। लेकिन प्रसंगानुसार औपनिषदिक् योग-चर्चा ही अपेक्षित है। अतः इसका आरम्भ सर्वप्रथम योग-तत्त्व से करना होगा कि योग

1. अमरकोष : 3.3.93

क्या है ? योग शब्द 'युज्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है— समाधि। इसका अर्थ ही है सम्यक् प्रकार से जुड़ना, मिलना आदि। और ऐसी स्थिति की प्राप्ति के उपाय, साधन, युक्ति या कर्म को 'योग' कहा जाता है। आसान भाषा में योग को इसप्रकार समझा जा सकता है—

जीवात्मा का परमात्मा के साथ सम्पूर्ण मिलन अर्थात् अद्वैतानुभूति-योग है।

देहात्मबुद्धि का सम्पूर्ण त्याग, जिससे परमात्मा से युक्त होने का मार्ग प्रशस्त हो-योग है।

जीवात्मा का उद्देश्य है, परमात्मा से मिलना, जो कैवल्य प्राप्ति का कारण बने, योग है।

योग शब्द मनोनिरोध का भी वाचक है, मनोनिरोध के बिना ज्ञान, भक्ति जैसे भगवत्प्राप्ति के सभी उपाय व्यर्थ से हैं।

शिव और शक्ति का सामञ्जस्य-योग है।

चित्तवृति का सर्वथा निरोध होना ही योग है— **योगश्चितवृत्तिनिरोधः**।[2]

समस्त आसक्तियों का त्याग, सिद्धि-असिद्धि में समान बुद्धि होना, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, शत्रु-मित्र, गर्म -ठंढा आदि जैसे द्वन्द्वों से मुक्त होकर समत्व प्राप्त करना ही योग है— **समत्वं योग उच्यते**।[3]

गणितीय योग— जोड़ना

दो तत्त्व आपस में जुड़कर तथा अपने स्वरुप को खोकर एक नये पदार्थ में परिणत होना। ऐसा रसायनविज्ञान के योग में होता है। आध्यात्मिक योग में भी यही लक्षण पाये जाते हैं, जीव का परमात्मा से योग होने पर सायुज्यता, सामीप्यता आदि की प्राप्ति होती, जो अपने स्वरूप का परमात्मा में पूर्णतः विलिनीकरण के पश्चात् ही प्राप्त होता है।

गीता का कथन है— कर्म की कुशलता ही योग है, लेकिन योग का विकृत रूप, जिसमें वशीकरण, जादू, इन्द्रजाल आदि को योगविद्या का नाम देकर घृणित उद्देश्य की पूर्ति का नाम आजकल के सन्दर्भ में 'योग' है एवं ऐसे कर्मों के करने वालों को 'योगसाधक' कहा जाता है—जो सर्वथा अनुचित है, सच्चे अर्थ में योगमार्ग के दुरुपयोगी एवं कुमार्गगामी साधक।

उपनिषदों में तत्त्वज्ञान के अतिरिक्त मोक्षोपाय के उन्नत उपदेश भी देखे जा सकते हैं। सांसारिक भवतापतापित जीवों का सर्वसंतापहारी भगवान् से किस प्रकार योग हो, इसपर भी चर्चा की गयी है। जबतक अन्तर्दृष्टि की प्राप्ति नहीं होती, तबतक योग का सर्वांग साक्षात्कार सम्भव नहीं। सर्वांग साक्षात्कार का तात्पर्य है— योग के आठों अंगों को जानना।

योग के आठ अंग हैं—

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टाङ्गानि।[4]

1.यम, 2. नियम, 3. आसन, 4. प्राणायाम, 5. प्रत्याहार, 6. धारणा, 7. ध्यान और 8. समाधि—ये योग के आठ अंग हैं। इनमें से पहले पाँच बहिरङ्ग तथा बाद के तीन अन्तरङ्ग साधन हैं। यहाँ योग से सन्दर्भित विविध आख्यानों, क्रियाओं, विवेचनों के संक्षिप्त सिद्धान्तों को उपनिषदों में देखने का प्रयास किया गया है—

श्वेताश्वतरोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में योग क्रियाओं का बड़ा ही विस्तृत वर्णन मिलता है।

प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः
क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं
विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः॥

2 पतंजलि : योगसूत्र, 1.2
3 गीता : 2.48
4 योगसूत्र : 2.29

समे शुचौ शर्करावह्निवालुका-
विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने
गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्॥[5]
लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं
वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं
योगप्रवृत्तिं प्रथमा वदन्ति॥[6]
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥[7]

अर्थात् 'योगसाधकों को सम्यक् आहार-विहार करते हुए तथा विधिवत् प्राणायाम करके प्राण के क्षीण हो जाने पर नासिका से बाहर निकाल दे। जैसे सारथि दुष्ट घोड़ों के लगाम को खींचकर उसका नियन्त्रण रखता हुआ गन्तव्य को चला जाता है, उसीप्रकार योगी को सावधानीपूर्वक मनोनिग्रह कर परमात्मा की प्राप्ति करे।' 'सम और शुद्ध, कंकड़-बालू-आग से रहित, शब्द जल और आश्रय से अनुकूल,नेत्रों को पीड़ा नहीं देने वाले, गुहा एवं एकान्त आदि जैसे वायुशून्य स्थान में मन को ध्यान लगाने का अभ्यास करना चाहिये।' 'शरीर का हल्कापन, आरोग्य, विषयासक्ति की निवृत्ति, शारीरिक वर्ण की उज्ज्वलता, स्वर की मधुरता, शुभ गन्ध वाला, अल्प मल-मूत्र का होना– इन सबको योग की पहली सिद्धि कहते हैं।' 'योगाग्निमय शरीर को धारण करने वाले साधकों के समीप रोग, बुढ़ापा नहीं आते और उनकी मृत्यु भी नहीं होती।'

(2) कठोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय कठ शाखान्तर्गत यह उपनिषद् यम और नचिकेता के बीच हुए परमात्मा के रहस्यमय एवं तत्त्वपूर्ण संवादों से परिपोषित है। इन श्लोकों में अध्यात्मिकयोग के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति का वर्णन मिलता है।

तं दुदर्शं गूढमनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥[8]

'जो योगमाया के पर्दे में छिपा सर्वव्यापी, सबके हृदय गुफा में स्थित, संसार के गहन वन में रहने वाला सनातन हैं; अध्यात्मयोग की प्राप्ति के द्वारा ही समझकर हर्ष और शोक को त्याग देता है।'

(3) ध्यानबिन्दुपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में ध्यानयोग की महिमा का प्रतिपादन है। ब्रह्मध्यानयोगान्तर्गत सर्वप्रथम प्रणव-ध्यान, आसन, प्राणायाम, त्रिमूर्तिध्यान, षट्चक्रभेदन आदि का महत्त्व बतलाते हुए प्रसंग का समापन नादानुसन्धान से होता है।

(4) तेजोबिन्दूपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय तेजोबिन्दूपनिषद् में मायिक जगत् से परे हृदयाकाश में स्थित प्रणवस्वरुप तेजोमय बिन्दु का ध्यान ही परमध्यान है–

तेजोबिन्दुःपरं ध्यानं विश्वात्महृदि संस्थितम्।[9]

यह सभी को प्रतीत नहीं होने के कारण अव्यक्त, ब्रह्मस्वरुप, परम गोपनीय एवं अधिष्ठानरूप है। सांसारिक द्वन्दों में आसक्त, वंश अभिमानी, शास्त्रज्ञानी जो मात्र शास्त्रों के संग्रह करते हों– वे तेजोबिन्दु को नहीं जान सकते। जो सारे दूषित भावों से छुटे हुए हैं– उन्हीं के द्वारा परात्पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

5 श्वेताश्वतरोपनिषद् : 2. 9-10
6 श्वेताश्वतरोपनिषद् : 2.13
7 श्वेताश्वतरोपनिषद् : 2.12
8 कठोपनिषद् : 1.2.12
9 तेजोबिन्दूपनिषद् : 1.1

(5) नादबिन्दुपनिषद्

ऋग्वेदीय इस उपनिषद् में ऊँकार की हंसरूप में उपासना की गयी है। योगयुक्त स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया है—जिसका मन परमात्मा में ही आसक्त है, वह योगमार्ग के द्वारा समस्त लौकिक आसक्तियों को त्यागकर तथा शारीरिक आत्माभिमान को त्याग दे — तभी वह ब्रह्मभाव से परमानन्द को प्राप्त कर सकता है। इस उपनिषद् में नाद के प्रकार, नादानुसंधान, नाद में मन का लय कैसे हो, इसकी चर्चा मिलती है।

(6) अमृतनादोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में योग के छः अंग कहे गये हैं—

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा।
तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते॥[10]

प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि— ये षडङ्ग-योग हैं। इनमें योग के सभी अंग अन्य की तरह समान हैं मात्र तर्क को छोड़कर। तर्क के बारे में यह कहा गया है—**आगमस्या विरोधेन उहनं तर्क उच्यते।**[11] शास्त्रों के अनुकूल ऊहा (युक्तिपूर्वक विचार) 'तर्क' कहा जाता है। योग तालवृक्ष के समान कुछ ही समय में फल देने योग्य हो जाता है, अतः इसका धारण योजनापूर्वक करने का विधान है।

(7) जाबालदर्शनोपनिषद्

इस सामवेदीय उपनिषद् में योगसाम्राज्य के अधिपति भगवान् दत्तात्रेय एवं इनके शिष्य मुनिवर्य सांकृति के बीच हुए संवाद में योग के आठों अंगों के विस्तृत वर्णन के साथ-साथ नाड़ी-परिचय, नाड़ी शोधन एवं आत्मशोधन की विधियाँ बतलायी गयी है। आत्मज्ञान की महिमा बतलाते हुए कहा गया है— बाह्यतीर्थ से श्रेष्ठ आन्तरिक तीर्थ है। आत्मतीर्थ ही महातीर्थ है।

शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः।
अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिताः॥[12]

'योगी पुरुष अपनी आत्मा में भगवान् शिव के दर्शन करते हैं, प्रतिमाओं में नहीं। अज्ञानी मनुष्यों के हृदय में भगवान् के प्रति भावना जाग्रत करने के लिये ही प्रतिमाओं की कल्पना की गयी है।'

(8) योगकुण्डल्युपनिषद्

तीन अध्यायों वाली कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् के प्रथम श्लोक में कहा गया है—

हेतुद्वयं हि चित्तस्य वासना च समीरणः।
तयोर्विनष्ट एकस्मिंस्तद् द्वावपि विनश्यतः॥[13]

वासना और प्राण—ये दो चित्त के हेतु कहे गये हैं। इनमें से किसी एक के नष्ट हो जाने से दोनों का नाश हो जाता है। इनके बाद प्राणायाम, कुण्डलिनीयोग आदि की चर्चा की गयी है। इसके दूसरे अध्याय में खेचरीविद्या, अभ्यास की महत्ता आदि का वर्णन है तथा तीसरे अध्याय में षट्चक्रों का वर्णन है।

(9) योगतत्त्वोपनिषद

कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में कहा गया है— योगहीन ज्ञान ध्रुवमोक्ष को नहीं दे सकता, उसीप्रकार ज्ञानहीन योग भी मोक्ष देने में असमर्थ है।[14] इसमें चार प्रकार के योग कहे गये हैं— मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग एवं राजयोग[15] हमारे शरीर में पञ्चतत्त्वों का स्थान कहाँ से कहाँ तक है, इसके विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त विभिन्न बन्धों के सन्दर्भ भी मिलते हैं।

10 अमृतनाद-उपनिषद् : 6
11 अमृतनाद-उपनिषद् : 17
12 जाबाल-उपनिषद्-4.59
13 योगकुण्डली-उपनिषद् 1.1
14 योगतत्त्व-उपनिषद् : 1. 15
15 योगतत्त्व-उपनिषद् : 1.19

(10) योगचूड़ामण्युपनिषद्

यह सामवेदीय उपनिषद् है। विभिन्न आसन, प्राणायाम, चक्र, नाड़ी, वायु, कुण्डलिनी, मुद्रा, बन्ध, प्रणवाभ्यास आदि जैसे योगतत्त्व के वर्ण्यविषयों का विवेचन मिलता है।

(11) योगशिखोपनिषत्

कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में योग के प्रभाव से रोगों का नाश एवं इसके सतत् अभ्यास से शारीरिक जड़ता का नाश होता है।[16] इसमें ज्ञान और योग को परस्पर अपेक्षित बतलाया गया है।

योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेद्विधे।
ज्ञानेनैव बिना योग न सिध्यति कदाचन॥[17]

इसमें भी चारों योग–मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग एवं राजयोग की चर्चा की गयी है, ये चारों योग मिलकर एक चतुर्विध योग बनाते हैं, जिसे महायोग कहा जाता है।

एक एव चतुर्धाऽयं महायोगोभिऽधीयते।[18]

(12) हंसोपनिषद्

शुक्लयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में मुख्यतः हंस (जीवात्मा) की चर्चा है। इसमें षट्चक्र भेदन, नादानुसन्धान आदि के बारे में वर्णन मिलता है।

(13) क्षुरिकोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में मात्र 23 मन्त्र (कहीं कहीं 25 भी) हैं, जिसमें यह बतलाया गया है कि तत्त्वज्ञान को बन्धन में रखने वाले घटकों को क्षुरिका (छुरी आदि) ही काटने में समर्थ है। अष्टांगयोग में विशेषकर 'धारणा' की सिद्धि के लिये विशेष चर्चा की गयी है। योग साधना के लिये सर्वप्रथम दृढ़ आसन पर बैठकर प्राणायाम की विशेष क्रियाओं को करना चाहिये। जिसप्रकार प्राणोत्सर्ग के समय दीप बुझने पर वह परमप्रकाश में विलीन हो जाते हैं, उसीप्रकार आत्मज्ञान से आत्मा के सांसारिक बन्धन नष्ट हो जाते हैं।

(14) वाराहोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में पाँच अध्याय हैं। इसमें भगवान् वराह एवं ऋषि ऋभु के बीच हुए योग चर्चा में से प्रथम चार अध्यायों में तत्त्वज्ञान एवं पाँचवें और अन्तिम अध्याय में तीन योग– लययोग, मन्त्रयोग एवं हठयोग के वर्णन के साथ-साथ योग के अंगों के विस्तृत व्यावहारिक ज्ञान दिये गये हैं।

(15) त्रिशिखब्राह्मणोपनिषद्

शुक्लयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में सर्वप्रथम सृष्टिक्रम का विवेचन करते हुए अष्टांग-योग के सभी अंगों में अन्तर्निहित तत्त्वों का विस्तार से वर्णन मिलता है। समाधि अवस्था में साधक की मनःस्थिति में समस्त वृत्तियों का नाश हो जाता है। इस अवस्था में कहा गया है–

अहमेव परं ब्रह्म ब्रह्माहमिति संस्थितिः।
समाधिः स तु विज्ञेयः सर्ववृत्तिविवर्जितः॥[19]

मैं ही परब्रह्म हूँ, ब्रह्म मैं हूँ, ऐसी सम्यक् स्थिति को ही समाधि जानो, इसमें और कोई भी वृत्ति नहीं रहती।

(16) कैवल्योपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में महर्षि आश्वलायन एवं प्रजापति ब्रह्मदेव के बीच हुए संवाद में आत्मतत्त्व के बारे में प्रकाश डाला गया है।

तस्मै स होवाच पितामहश्च
श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैहि।

16 योगशिखा-उपनिषद् : 1.146
17 योगशिखा-उपनिषद् : 1.51-52
18 योगशिखा-उपनिषद् : 1.130
19 त्रिशिखब्राह्मण उपनिषद् : 160-161

न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥[20]

ब्रह्माजी कहते हैं— 'तुम उस परात्पर तत्त्व को श्रद्धा, भक्ति, ध्यान और योग के द्वारा जानने का प्रयत्न करो। उसकी प्राप्ति न कर्म के द्वारा, न सन्तान के द्वारा और न धन के द्वारा होती है। ब्रह्मज्ञानियों ने केवल त्याग के द्वारा अमृतत्व को प्राप्त किया है।' पुनः कहते हैं स्नान आदि से शुद्ध होकर निर्जन स्थान में सुखासन से बैठकर ग्रीवा, सिर और शरीर को सीधे रखकर इन्द्रिय निरोध कर भक्तिपूर्वक गुरु को प्रणाम करके अपने हृदयकमल में स्थित विशुद्ध दुःख-शोकातीत आत्मतत्त्व का चिन्तन करे।

(16) गर्भोपनिषद्

कृष्णयजुर्वेदीय इस उपनिषद् में गर्भ-विज्ञान की विलक्षण रुपरेखा देखने की मिलती हैं, इसे ऋषि पिप्पलाद द्वारा प्रकटित मोक्षशास्त्र भी कहा जाता है। इसके चौथे श्लोकों के समूह में से एक में गर्भस्थ जीव यही सोचा करता है— जब मैं इस योनि से छुट जाउँगा तब अशुभ कर्मों का नाश करने वाले मुक्ति-प्रदाता महेश्वर के चरणों का आश्रय लूँगा। यह पुनः कहता है —

यदि योन्यां प्रमुञ्चामि सांख्यं योगं वा समाश्रये।
अशुभक्षयकर्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥[21]

'यदि मैं योनि से छुट जाऊँगा तब अशुभ कर्मों का नाश करने वाले और मुक्ति फल प्रदान करने वाले सांख्य और योग का अभ्यास करूँगा।'

(17) मुण्डकोपनिषद्

अथर्ववेदीय शौनकी शाखा से सम्बन्धित इस उपनिषद् के इस श्लोक में कर्मफल और कर्मासक्ति के त्यागरूप योग के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि का महत्त्व बतलाते हुए कहा गया है—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥[22]

जिन्होंनें उपनिषद् शास्त्र के विज्ञान द्वारा उसके अर्थभूत परमात्मा को पूर्णतः जान लिया है तथा कर्मफल और आसक्ति के त्यागरूप योग से जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, वे समस्त प्रयत्नशील साधक शरीर त्यागकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं और वहाँ परम अमृतस्वरूप होकर सांसारिक बन्धनों सर्वथा मुक्त हो जाते हैं।

उपनिषदों की शृंखला में बहुत से अन्य उपनिषद् ऐसे भी हैं, जिनमें योग और यौगिक साधना से सम्बन्धित वर्णनों की प्रचुरता है, जैसे— मैत्रायण्युपनिषद्, योगराजोपनिषद्, योगचूड़ामणि उपनिषद् आदि। यहाँ कुछ ही उपनिषदों में वर्णित योग-संदर्भों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। यौगिक साधनों से रहित हमारी अध्यात्मिकयात्रा अधूरी मानी जाती है। उपनिषदों में वर्णित साधनरूप में अनेकों सिद्धान्त हैं, उनको किसी-न-किसी प्रकार से योग की दृष्टि से देखा जा सकता है। सनातन सिद्धान्त में योग की अनेक प्रणालियाँ हमारे आस-पास ही बिखरी पड़ी है, जैसे— राजयोग, हठयोग, लययोग, मन्त्रयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, जपयोग, शब्दयोग, स्वरयोग, ध्यानयोग, पाशुपतयोग, प्रेमयोग, समाधियोग, तारकयोग, बुद्धियोग, क्रियायोग, सांख्ययोग, पूर्णयोग, कुण्डलिनीयोग, ब्रह्मयोग, पुरुषोत्तमयोग आदि के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों से सम्बन्धित योग भी दृष्टव्य हैं। योग-प्रक्रिया में

20 कैवल्योपनिषद् : 2.3
21 गर्भोपनिषद् : 4
22 मुण्डकोपनिषद् : 3.2.6

मनोनिरोध एक अनिवार्य प्रक्रिया है, जिसपर समस्त योग-भवन का आधार टिका हुआ है। उपनिषदों के प्रतिपाद्य विषय हमारे अध्यात्मिक शिक्षा को तो परिपुष्ट करती ही है, साथ में योगनुष्ठान द्वारा मोक्षसाधन के मार्ग को भी प्रदीप्त करती है।

विशेष

आजकल के कुछ योगसाधकों, योगप्रेमियों से एक अनुरोध भी है– 'योग' को योग ही बोलें– 'योगा' नहीं। क्योंकि यह सनातन शब्द है, कोई विदेशी नहीं। आजकल योग के नाम पर प्राणायाम और कुछ आसन करने के बाद ही समझ लेते हैं कि हमारा योग (योगा) हो गया या हमने योगा सीख लिया और इसके बाद इसी तर्ज पर अनेक योगगुरुओं का उद्भव होते देखा गया है। योग की गम्भीरता और उसके तात्विक स्वरुप को समझते हुए योग के आठों अंगों को व्यवहार में लाना आवश्यक है, तभी 'नर' से 'नारायण' हुआ जा सकता है। मात्र एक दो विधान करने से न तो योग होगा और न परमात्म दर्शन ही। यम और नियमों का पालन महान् फल देने वाला कहा गया है– इसे हम सभी छोड़कर योग के अगले मात्र दो चरणों (आसन और प्राणायाम) को करने की व्यग्रता करते हैं, और योग के अन्तिम चार चरणों (प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) का यथोचित सम्मान नहीं करते–ऐसे में योग क्या सम्भव है ? सन्त कबीर की एक उक्ति इस सन्दर्भ में प्रासंगिक है–

साधू होना चाहिये, पक्का ह्वै के खेल।
कच्चा सरसों पेरिके, खरी भय नहिं तेल॥

(साखी : 280)

साधु अगर हों, तो पक्की साधना करके हों। यदि कोई कच्चेपन में साधु होगा, तो जैसे कच्ची सरसों पेरने पर उससे न तो खल्ली बनेगी और न तेल ही मिलेगा– यही दशा उसकी होगी।

***

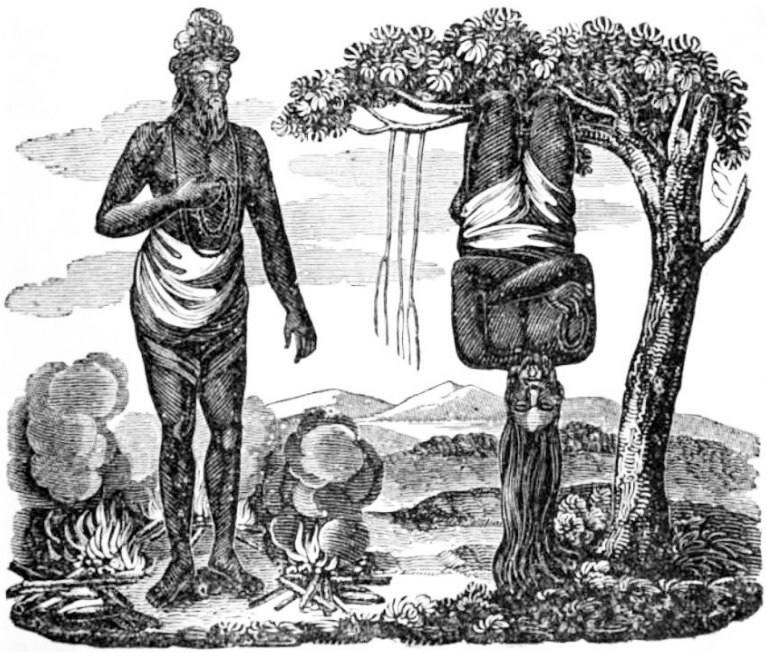

हठयोग की विभिन्न मुद्राओं में 19वीं शती के भारतीय योगी।

स्रोत:

THE MISSIONARY HERALD, vol. XXIX, 1833. No. XII, June 1833, p. 45

पुराण की परम्परा में योग

डा. श्रीकृष्ण जुगनू
लगभग 175 ग्रन्थों के अनुवादक एवं सम्पादक, विश्वाधारम्, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायक नगर, उदयपुर 313001 (राजस्थान), राजस्थान।

प्राचीन वैदिक सिद्धान्त को प्रवचन के रूप में सरल-सुगम भाषा में आम जनता के बीच प्रचारित करने में पुराण-साहित्य का अद्भुत योगदान रहा है। चमत्कार-भरी कथाओं के माध्यम से पुराण ने हमेशा समाज को अपने सिद्धान्तों से जोड़ने का कार्य किया है। फलतः अनेक विरोधी कथाओं के बावजूद उन कथाओं के संदेश हमेशा वैदिक परम्परा की व्याख्या करते रहे हैं। योग के सिद्धान्त तथा व्यवहार के पक्ष में भी यह सत्य है। उपनिषद्-साहित्य तथा पातंजल योगसूत्र में जिस योग का प्रतिपादन हुआ उसे पुराणों ने भी अपने शब्दों में दुहराया है। वायु पुराण, विष्णु पुराण, अग्नि पुराण आदि में योग के अंगों का विवेचन द्रष्टव्य है। यहाँ लेखक ने पुराण-साहित्य में योग को प्रतिपादित करने का प्रयास किया है। वास्तविकता है कि पुराण में आगम के तत्त्व हैं। आगम के चार अंगों— ज्ञान, क्रिया, योग तथा चर्या ये चारों पुराणों के भी वर्ण्य विषय हो जाते हैं। अतः स्वाभाविक है कि पुराण-साहित्य में योग का विशद विवेचन हुआ है।

ऋषि मनीषा में योग को परम पुरुषार्थ की सिद्धि का हेतु माना गया है। व्यक्ति सभ्यता के उष:काल से ही अपने अभीष्ट के लिए नानाविध उपाय करता आया है किन्तु वह संसार के आवागमन से मुक्ति के प्रधान-उपाय के रूप में योग के महत्त्व को स्वीकारता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक काल में योग व्यक्ति के स्वास्थ्य-सिद्धि के उपाय के रूप में सामने आया होगा किन्तु स्वाध्याय और अन्य समस्त कार्यों में एकाग्रता के महत्त्व को कदाचित सर्वप्रथम स्वीकारा गया होगा। चरक इस बात की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं कि जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर निर्देशों का पालन-अनुकरण करता है, वह लोगों को आरोग्यमय जीवन प्रदान करनेवाला होता है और स्वयं भी धैर्यवान्, प्रखर, स्मरणशक्ति से सम्पन्न, बुद्धिमान् और धर्मशील होता है—

इदमखिलमधीत्य सम्यगर्थान्
विमृशति योऽविमनाः प्रयोगनित्यः।
स मनुजः सुखजीवितप्रदाता
भवति धृति-स्मृति-बुद्धि-धर्मवृद्धः॥[1]

इस प्रकार एकाग्रता का आशय कदाचित वैदिक ऋषियों ने सर्वप्रथम जाना होगा और उसी को कालान्तर में महर्षि पतंजलि ने योग की लक्षणात्मक परिभाषा के रूप में स्वीकृत किया—

1 चरकसंहिता : 12. 51

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।

यह परिभाषा कोई एकाएक निर्धारित नहीं हुई होगी। ऐसा लगता है कि पूर्वकाल में मनीषियों की संगोष्ठियाँ– उपनिषद् ही किसी विषय पर सूक्ष्मतम परिभाषाएँ तय करती थीं। इसके लिए पर्याप्त वाद-विवाद होता था और उहाओं के तर्कसम्मत और प्रायोगिक तौर पर शमन के उपरान्त ही प्रस्तावों के आधार पर मतैक्य होता था। चरक आदि के ग्रन्थ सिद्ध करते हैं कभी हिमालय की कन्दराओं में ऋषियों के उपनिषद् प्राणियों के विभिन्न विषयों पर विचारपूर्वक निर्णय के स्तर पर पहुँचते थे–

विघ्नभूता यदा रोगाः प्रादुर्भूताः शरीरिणाम्।
तपोपवासाध्ययनब्रह्मचर्यव्रतायुषाम् ॥
तदा भूतेष्वनुक्रोशं पुरस्कृत्य महर्षयः।
समेताः पुण्यकर्माणः पार्श्वे हिमवतः शुभे।[2]

कालान्तर में ऐसे आयोजन नैमिषारण्य में होने लगे थे और पुराणों के प्रणयन से लेकर व्याख्यान तक के लिए सूतादि वहीं पहुँचते थे।

इससे पूर्व तक दर्शन के एक अंग के रूप में योग को स्वीकार लिया गया था क्योंकि गीता में प्रत्येक अध्याय का नामकरण किसी न किसी योग के आधार पर किया गया है और गीता के संगठन-काल तक 4 मनुओं की ही मान्यता थी–

महर्षय सप्तः पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।[3]

पुराणकाल तक आते-आते 14 मनुओं की मान्यता हो गई। यही नहीं, प्रारंभिक पुराण-स्वरूप का विभाजन क्या हुआ, विभिन्न धार्मिक मान्यताओं के आधार पर भी पुराणों के विषय का निर्धारण होते हुए उनका संगठन होने लगा किन्तु इसके साथ ही यह वैशिष्ट्य भी उभरा कि सभी धार्मिक मान्यताओं में योग को सर्वोपरि महत्त्व मिला और देवताओं और ऋषियों के नाम पर कभी ब्राह्म योग, कभी वैष्णव योग, कभी माहेश्वर योग, कभी सौर योग तो कभी शाक्त योग के रूप में योग के लक्षणों का सूक्ष्म विभाजन करते हुए साधनात्मक रूप में लब्धियों को लिखा जाने लगा। पुराणों में प्राचीन कहे जाने वाले वायुपुराण का रचयिता माहेश्वर योग का प्रतिपादन करता है। वैसे शैव पुराणों में योग विषयक विवेचन मिलता ही है। लिङ्गपुराण में कहा गया है कि 'योग' शब्द के द्वारा निर्वाण संज्ञक तुरीय महेश के पद को कहा जाता है। उसका हेतु ऋषि भगवान् रुद्र का ही ज्ञान होता है एवं उक्त ज्ञान भी भगवान् शङ्कर की ही कृपा से होता है। उनकी कृपा का कारण भी वास्तव में उनकी कृपा ही है। जिस ज्ञान से इस अगाध संसार रूपेण सिन्धु से तारण हो जाता है, इन्द्रियों की वृत्तियों का निरोध होता है और योग की सिद्धि होती है

योगशब्देन निर्वाण माहेशं पदमुच्यते।
तस्य हेतुर्ऋषेर्ज्ञानं ज्ञानं तस्य प्रसादतः॥
ज्ञानेन निर्दहेत्पापं निरुध्य विषयान् सदा।
निरुद्धेन्द्रियवृत्तेस्तु योगसिद्धिर्भविष्यति॥[4]

वायुपुराण में योग की साधना से रुद्रलोक प्राप्ति का वर्णन अनेक सिद्धों के प्रसङ्ग में आया है–

प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोक व्रजन्ति ते।[5]

यह योग माहेश्वर प्रोक्त कहा गया है। पुराणकार ने साधनात्मक पक्ष के लिए इसका धर्म के रूप में उल्लेख किया है किन्तु यह पातञ्जल योग (योगदर्शन 1, 3) की भाँति अष्टाङ्ग न होकर पञ्चाङ्ग ही था–

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा।
स्मरणं चैव योगेऽस्मिनपञ्च धर्मा प्रकीर्तिताः॥[6]

2 चरकसंहिता : सूत्रस्थान 1. 6-7 3 गीता : 10.6
4 लिङ्गपुराण : पूर्व. 8, 5-6 5 वायुपुराण : 23, 184 इत्यादि 6 वायु पुराण : 10. 75-76

वैसे भी कई ग्रन्थों में योग के अङ्गों की संख्या को लेकर मत-मतान्तर ही रहे हैं। लिङ्गपुराण में अष्टाङ्गयोग की मान्यता आई है। सम्भवतः वायुपुराण का पाठ प्राचीन होने से उसमें पञ्चाङ्गों की ही मान्यता है तथापि 104वें अध्याय में आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, यम, नियम एवं समाधि का क्रमशः नामोल्लेख हुआ है—

आसनं प्राणरोधश्च प्रत्याहारश्च धारणा॥
ध्यानं समाधिरेतानि यमैश्च नियमैः सह।
अष्टाङ्गानि यदर्थं च चरन्ति मुनिपुङ्गवाः॥[7]

उक्त पाँच अङ्गों का लक्षण, कारण और तत्त्व भी महेश्वर किंवा रुद्र के मतानुसार ही बताया गया है। एक स्थान पर पुराणकार योगप्रवर्तक का उल्लेख करता है[8] किन्तु वह पतञ्जलि ही है, यह कहना कठिन है क्योंकि पातञ्जल योगाङ्गों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि की गणना होती है जबकि माहेश्वर योग में सीधे ही प्राणायाम और तत्काल ध्यान की गणना की गई और समाधि की अपेक्षा स्मरण की गणना की गई है। पुराणकार का मत है कि प्राणायाम से दोषों का, धारणा से पाप का, प्रत्याहार से विषय समूह का, ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है।[9]

विष्णुपुराण में ब्राह्मयोग के प्रसंग में कहा गया है कि उसके जानकार निमिवंशोत्पन्न केशिध्वज थे और इस योग की साधना से साधक ब्रह्म में लीन रहते थे और अपने स्वरूप से कभी च्युत नहीं होते थे। आत्मज्ञान की अपेक्षा रखने वाली मन की जो गति है, उसका ब्रह्म के साथ संयोग होना ही योग कहा जाता है, जिसका योग इस प्रकार के विशिष्ट धर्म से युक्त होता है, वह मुमुक्षु योगी कहलाता है—

आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते॥
एवमत्यन्तवैशिष्ट्ययुक्तधर्मोपलक्षणः ।
यस्य योगस्स वै योगी मुमुक्षुरभिधीयते॥[10]

पुराणकार ने पतंजलि की भाँति ही विभिन्न योगांगों का विवरण खाण्डिक्य के प्रति उपदेश के रूप में दिया है और इसी प्रकार देवीपुराण में भी योग के उक्त क्रियापादों और उनकी साधना व लब्धियों का वर्णन हुआ है। भविष्यपुराण के प्राचीन पाठ में भी योगांगों का विवरण मिलता है। इस प्रकार योग की क्रियात्मक और ज्ञानात्मक संज्ञाएँ साधकोचित प्रतिपाद्य पर निर्भर करने वाली रही।

यही नहीं, योगसाधकों की कई श्रृंखलाएँ भी खड़ी होती रही जिन्होंने योग की विषय वस्तु को विस्तार देते हुए प्रमुखता से साधनात्मक पक्षों को विशदता दी। इनमें राजयोग, हठयोग, वज्रयोग, तन्त्रयोग जैसे विविध कठिन-कृच्छ्र विषय भी जुड़े और खेचरी, भूचरी, चाञ्चरी, अगोचरी, उन्मनी जैसी मुद्राओं ने स्वतन्त्र मुद्रायोग ही संगठित किया वहीं, उपनिषद्काल में हंसयोग जैसे सहज श्वास-प्रश्वास विषयक योग के साधकों का वर्चस्व हुआ। सामान्यतः संयोग अथवा जुड़ाव के रूप में जिस योग को स्वीकारा गया, वह साधकों की अनुभूतियों और उपलब्धियों की बुनियाद पर विशद स्वरूप प्राप्त करता चला गया और सिद्धि के सेतु के रूप में योग का आशय लिया जाने लगा। इसी से जहाँ परकाया प्रवेश जैसी मान्यता की फलश्रुति देखी गई, वहीं अष्टसिद्धि और नवनिधि की प्राप्ति होना भी स्वीकारा गया और इन सांसारिक उपलब्धियों से दूर, स्वर्ग और मोक्ष की लब्धि को भी योग से जोड़कर देखा जाने लगा।

7 उपर्युक्त : 104. 24-25
8 उपर्युक्त : 11. 60
9 उपर्युक्त : 10. 93
10 विष्णुपुराण : 6. 7. 31-32

'हर्षचरित' में बाणभट्ट सिद्ध करता है कि तब तक साधकों ने कैसे वेताल सिद्धि को भी योग साधना से होना मान लिया गया था।

उक्त विवरण से ऐसा प्रतीत होता है कि दैहिक और दैविक के साथ-साथ आध्यात्मिक सिद्धि के प्रमुख उपाय के रूप में योग को चिंतामणिवत् माना गया और बाद में जब तांत्रिक प्रभाव आया तो उसकी क्रियाएँ भी योग के रूप में ही स्वीकार ली गई। बौद्ध ग्रन्थ साधनमाला और मंजूश्रीमूलकल्प के विवरणों में ऐसे विकल्पों को पाया जा सकता है। तंत्र और अन्य संहितात्मक ग्रन्थों में योग के सम्बन्ध में अनेक प्रसंग संवादादि रूप में प्राप्य हैं– भले ही रसायनादि संयोगों के प्रतिपादक किमियागिरी वाले ग्रन्थ हों या आयुर्वेदिक वाङ्मय, योगानुसार फल प्राप्ति ने ही योग को बहु-अर्थी सिद्ध किया है।

विष्णुपुराणकार सिद्ध करता है कि यम-नियमादि साधक को सात्विक पथारूढ़ करते हैं और इसके अन्य चरण आत्मिक सुखानुभूति और निर्विकल्प मार्ग की ओर अग्रसर करते जाते हैं, बशर्ते साधक किसी योगमाया के जंजाल में नहीं पड़े– जैसा कि मार्कण्डेयपुराणकार ने पद्मिनी विद्या के सम्बन्ध में कहा है।

योगांगों में प्राणायाम को साधना का आरंभिक चरण कहा गया है। प्राण की विस्तार-गति और प्राण के निरोध को प्राणायाम माना गया है। यह तीन प्रकार का है– उत्तम, मध्यम एवं मन्द। प्राणायाम का प्रमाण 12 मात्रात्मक बताते हुए माना गया कि यह प्रमाण मन्द का है, इसके 12 उद्घात है। मध्यम प्राणायाम 24 मात्रात्मक होता है जिसके दो उद्घात है। उत्तम प्राणायाम की 63 मात्राएँ होती हैं एवं 3 उद्घात हैं। पसीना, कम्पन और विषाद की स्थितियाँ उत्तम प्राणायाम जनित कही गई है। प्राणायाम से वायु के वश में होने पर साधक के भय का निवारण, शरीरगत पाप का निवारण और सत्वगुणों का उदय होता है। इसी प्रकार प्राणायाम के प्रयोजनों में क्रमशः शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद बताए गए हैं।[11]

वायुपुराण में योग की सिद्धि का लक्षण ध्यान कहा गया है, यह सब अङ्गों की समष्टि रूप में सिद्धि का नाम है। ध्यानयुक्त योग अपने को सदैव चन्द्र-सूर्य के समान देखता है। विषयों से निवृत्ति पाने को प्रत्याहार कहा जाता है।[12] योग में निरत होते हुए अपनी इन्द्रियों, विषयों, मन और पञ्चवायु को समवाय द्वारा वश में करते हुए प्रत्याहार का अभ्यास किया जाता है। कछुआ जैसे अपने अंगों को समेट लेता है वैसे ही योगी सम्पूर्ण कामनाओं, विषय समूहों से मन को हटाकर आत्मरति करता है। प्राणायामकाल में वायु द्वारा नाभि से कण्ठ पर्यन्त पूर्णकर प्रत्याहार का आरम्भ किया जाता है।[13] इसी प्रकार प्राणापानादि वायु के निरोध को प्राणायाम कहा है और मन की धारणा को ही धारणा नाम से अभिधेय किया है। योग साधना से कई प्रकार के उपसर्ग हो जाते हैं, ऐसे में नाना द्रव्यों की धारणा करने से उपसर्ग का शमन किया जा सकता है।[14]

योग-साधना के लिए उपयोगी आसनों का अभ्यास किया जाता है। पतञ्जलि ने 'स्थिर सुखमासनम्' मात्र कहा है वहीं वायु और देवीपुराणकार ने योग के लिए स्वस्तिक, पद्म, अर्द्ध समजानु, एकजानु, उत्तान और किसी भी आसन पर सुस्थिर रहने का निर्देश करते हैं। आसन को दृढ़भाव से लगाकर, समकाय हो, दोनों पाँवों को परस्पर

11 वायुपुराण : 10. 78-82 एवं 11. 4
12 उपर्युक्त 11. 30-37
13 उपर्युक्त 11. 17-20
14 उपर्युक्त 12. 13-19

मिलाएँ अथवा दोनों ही पैर की एड़ियों द्वारा लिंग तथा दोनों अण्डकोश को निपीड़ित करके ग्रीवा व मस्तक को कुछ ऊपर उठाएँ एवं मुँह को बन्द कर एवं आँखों को मूँद कर बैठें एवं दिशाओं को न देखते हुए केवल नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को स्थिर करें।[15] इस प्रकार यह बन्ध का लक्षण भी है।

योग-साधक के लिए योग्य स्थान-स्थितियों के सम्बन्ध में कहा गया है कि अग्नि के निकट, वन में सूखे पत्तों के ढेर, कीड़े-मकोड़े वाली जगह, श्मशान, पुरानी गोशाला, चौराहा, कोलाहल, डरावनी जगह, वृक्ष के नीचे, वल्मीक से बनी ऊँची भूमि, नदी और कुआँ के समीप, भूखा रहकर, बिना मन के, व्याकुल चित्त होकर कभी योग साधना नहीं करनी चाहिए। लिंगपुराण में कहा गया है कि किसी अच्छे गोपनीय स्थान, शुभ, रमणीक स्थान, पर्वत की गुफा, सुगुप्त शिव क्षेत्र, शिवोद्यान, वन, गृह, सुशुभ देश, एकान्त जहाँ कि कोई भी मनुष्य न हो, जीव जन्तुओं से रहित स्थान, अत्यन्त निर्मल स्थल, भली-भाँति लिपा-पुता तथा चित्रांकनों से मण्डित स्थान जो कि दर्पण के समान प्रतीति देता हो और जहाँ काले अगरु की सुवास हो, विभिन्न भाँति के पुष्पों से समाकीर्ण स्थल जिसमें ऊपर वितान की शोभा हो; फल, पल्लव तथा मूलयुक्त स्थान, कुश-पुष्पों से युक्त स्थान में भली प्रकार आसन पर स्थित होकर स्वयं परम प्रसन्न होते हुए, योग के अङ्गों का अभ्यास करना चाहिए। आरम्भ में, पहले गुरु को प्रणाम करें और बाद में शिव, देवी तथा विनायक को प्रणाम करना चाहिए।[16]

पुराणादि में योग से प्राप्त सिद्धियों, ऐश्वर्यों और फलाफल का वर्णन भी हुआ है। इन ऐश्वर्यों में अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, व शित्व एवं कामावसायिकता जैसी आठ सिद्धियाँ बताई गई हैं।[17] यह भी कहा गया है कि देह में जब सत्वगुण की अधिकता, आरोग्य, लोभ का अभाव, कान्तिमयता, सुस्वर, सुभगमूर्ति, उत्तम गन्ध एवं मल-मूत्र की अल्पता जैसे लक्षण दिखाई देने लगें तो योग की पहली प्रकृति की सिद्धि को जानना चाहिए और सिद्धियों को त्यागकर परम लक्ष्य का चिन्तन करना चाहिए।

***

15 तत्रैव : 11. 14-16
16 लिङ्ग : पूर्व, 8, 81-85
17 वायु पुराण : 11. 63 एवं 13. 2—17

भागवत महापुराण में प्राणायाम, धारणा, प्रत्याहार और ध्यान का फल

(श्रीमद्भागवतपुराणम्/स्कन्धः 3/अध्यायः 28, श्लोक 11)

प्राणायामैः दहेद् दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषान् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान्गुणान्॥

प्राणायाम कर दोषों को जलावें, धारणाओं से पापों का नाश करें। प्रत्याहार से इन्द्रियों का विषयों के साथ संसर्ग को त्याग करें और ध्यान से ईश्वर के अतिरिक्त सभी वस्तुओं का परित्याग करें।

शैव-आगमों में योग के सिद्धान्त एवं व्यावहारिक पक्ष

डा. टी. एस. षण्मुख शिवाचार्य

सम्प्रति कालिकाम्बाल मन्दिर के शैवागमाचार्य तथा शैवागमों के विशिष्ट अध्येता एवं गवेषक। संयुक्त राष्ट्र में अन्तरराष्ट्रीय धर्म-सम्मेलन में सहभागिता। कामिकागम में उत्सव विषय पर शोध-प्रबन्ध का लेखन। नया नंबर 66, पुराना नंबर 101, रामस्वामी स्ट्रीट्, मन्नडी, चेन्नई, 600 001 (तमिलनाडु),

परम्परा प्राप्त रहने पर यदि प्रवर्तक का नाम भी ज्ञात हो तो उसे आगम कहते हैं—यह आगम की उत्पत्तिपरक परिभाषा है; किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से जहाँ इष्टदेव का आवाहन किया जाये वह आगम पद्धति कहलाती है। इस प्रकार आगम की शाखाएँ इष्टदेव के आधार पर स्थूल रूप से विभक्त होती हैं—शैवागम, वैष्णवागम, शाक्तागम, सौरागम, गाणपत्यागम तथा आग्नेयागम। इनमें सबी आगमों में योग का विशद वर्णन हुआ है। ध्यान तथा धारणा के स्तर पर जहाँ क्रियाएँ इष्टदेव से सन्दर्भित हो जाती है, वहाँ योग की शाखाएँ भी परस्पर भिन्न हो जाती है। शैवागम में ध्येय देव भगवान् शिव हैं, अतः शैव योगाचार्य उन्हीं से सम्बन्धित न्यास-धारणा करेंगे, उन्हीं का ध्यान किया जायेगा तथा शिवसायुज्य की ही कामना की जाएगी। इस प्रकार, योग के अंगों में से धारणा तथा ध्यान के गम्भीर विवेचन के लिए आगम की शाखाओं में योग का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। उदाहरणस्वरूप यहाँ यहाँ शैवागम के योग सिद्धान्त प्रतिपादित हैं। डा. ममता मिश्र 'दाश' के प्रयास से मूल अंगरेजी से अनूदित होकर यह आलेख आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा सका है इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

एवमेतत्समाख्यातं योगिनां योगमुत्तमम्।
लक्षभूतमलक्ष्यञ्च द्विप्रकारं प्रकीर्तितम्॥
लक्षं दृष्ट्वा तु वै सम्यक् वेत्ता तत्स्थं नियोजयेत्।
तद्गतस्तन्मयो भूत्वा युञ्जनाद् योगमुच्यते॥
सुसदुःखेन संवेत्ति करणैश्च विवर्जितः।
निश्चलस्थिरभूतस्त्वलक्षं स उदाहृतम्॥
एव ते योग आख्यातः परञ्च परमञ्च यत्।
यः कश्चित् तन्मयी भूतो योगं तस्य समादिशेत्॥
ओंबुद्धीर्मनोऽहंकारश्चैता जीवश्च पञ्चमः।
तुर्यस्थाने समाश्रित्य प्रणवस्संव्यवस्थितः॥
प्रणवो बिन्दुबन्धो हि सुषुम्नानादगोचरे।
षोडशान्तविर्सगस्थः परतो मुक्तिरिष्यते॥
स एव वाङ्मयो देव मन्त्रपञ्चांशदव्ययः।

—निःश्वासागम 1. 30-36

शैव सिद्धान्त दर्शन जो कश्मीर में उत्पन्न हुआ और एक बार पूरे उपमहाद्वीप में विस्तार लाभ किया, पर दक्षिण भारत में इसका प्रयोग अधिक हुआ है। यह एक समृद्ध परम्परा है जिसमें एक मजबूत सिद्धान्त और व्यवहार दोनों हैं।

इन सिद्धान्तों का मुख्य उद्देश्य देवताओं की पूजा तो है ही, पर देवालय, देवालय का अन्तः और बहिःपरिवेश, भक्त तथा बाहर जन समाज की सुरक्षा को आगे रखकर सिद्धान्त और आगम ग्रन्थों की रचना हुई है। साधारण भक्तों के मत में ये सिद्धान्त और आगम ग्रन्थ सब शिवप्रोक्त हैं।

हर शैवागाम ग्रन्थों योगपाद के बारे में उल्लिखित है। लगभग सभी शैवागमों में चर्या, क्रिया, योग और ज्ञान के रूप में चार पाद पाए जाते हैं। विशेष रूप से सभी आगमों में योगपाद के बारे में विस्तार से वर्णन है।

परन्तु एक पूजक के लिये योग में लीन होने की आवश्यकता क्या है? इस संशय को दूर करने के लिये देवीकालोत्तर तन्त्र में उल्लेख है–

विषये लोलुपं चित्तं मर्कटादपि चञ्चलम्।
सर्वशून्यपदे स्थित्वा ततो निर्वाणमश्नुयात्॥
चित्ते चलति संसारः निश्चले मोक्ष एव तु।
तस्मात् चित्तं स्थिरीकुर्यात् प्रज्ञया परया पुनः॥

एक शिव भक्त को अपने मन को वश में लाकर निश्चल बनाकर शून्य में विलीन होना ही है।

जितने शैवपद्धति ग्रन्थ भी हैं, उसमें भी योग एक मुख्य विषय के रूप में वर्णित है। सिद्धांतसारावली, जिसे शैव सम्प्रदाय में एक महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ मानते हैं, उसमें भी योगपाद के बारे में विस्तार रूप से बताया गया है।

आगम सम्प्रदाय में पूजा का एक महत्त्वपूर्ण मुख्य भाग योग है। यह हर शैवाचार्यों द्वारा की गई पूजा के प्रारम्भ में प्रार्थनाओं के साथ किया जाता है। विश्वास है कि योग साधन मंदिर की सुरक्षा के लिये, सर्व साधारण लोगों की सुरक्षा के लिये और साथ में आत्म शुद्धि के लिए किया जाता है।

योग अभ्यास करने का सही स्थान क्या है, इस जिज्ञासा के उत्तर में सर्वज्ञानोत्तरागम में निर्देश दिया गया है–

शून्याकारे मठे रम्ये देवतायतने शुभे।
नदीतीरे विविक्ते वा गृहे घोरवनेऽपि वा।
स्नात्वा शुचिरुपस्पृश्य प्रणम्य शिरसा शिवम्।
योगाचार्यं नमस्कृत्य योगं युञ्जीत मानवः॥

शैवागम चार मार्ग सिखाता है– चर्या, क्रिया, योग और ज्ञान। ये चारों मार्ग परम मोक्ष के लिए आवश्यक माने गए हैं।

योगी अगर परार्थ पूजा में व्यस्य है तो इनके लिये इतना कठोर नियम नहीं होता॥ इसीलिये स्वच्छंदतन्त्र में कहा गया–

योगी स्वच्छन्दयोगेन स्वच्छन्दगतिचारिणा।
स स्वच्छन्दपदे युक्तः स्वच्छन्दसमतां व्रजेत्॥

हर आगम ग्रन्थ में योग पाद पर बहुत विस्तृत व्याख्या है। मंदिर में किए जाने वाले अनुष्ठानों को परार्थ पूजा कहा जाता है जो पूरे ब्रह्मांड के लाभ के लिए है। हालांकि ऐसा लग सकता है कि यह क्रिया है, चारों पाद मंदिर में किए जाने वाले सभी अनुष्ठानों, विशेष रूप से योग का एक अनिवार्य हिस्सा हैं।

पूजा की परिभाषा ही 'चंद्रार्कनाशने पूजा' के रूप में दी गई है– चंद्रमा और सूर्य का विनाश, अर्थात् चन्द्र नाडी और सूर्य नाडी को अपने वश में लाना। जिसका अर्थ है इड़ा और पिंगला नाड़ी का सुषुम्ना नाड़ी में विलय– जिसके माध्यम से सर्वोच्च– अर्थात् शिव में विलीन होना।

तो पूजा ही योग का एक रूप है। लेकिन विना प्राणायाम के योग तो सम्भव नहीं है। इसीलिये हर आगम ग्रन्थ में प्राणायाम को भी बहुत महत्त्व दिया गया है। यद्यपि अष्टांग योग– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि– की अवतारणा आगम ग्रन्थों में की गयी है, पर कुछ ग्रन्थों में पाँच या छह अंगों का विवरण देते हैं। पर हर ग्रन्थ में समाधि का वर्णन बडे विस्तार के साथ किया गया है।

शैवपरम्परा में समाधि अद्वैत-परम्परा से थोडा भिन्न है। शैवपरम्परा में समाधि का मतलब ईश्वर के साथ एकता का अनुभव करना– न कि ईश्वर होना।

------ चित्तं शून्यं नयेत् शनैः।
नष्टे चित्ते चिदानन्दं स्वयम् उद्योतते परम्।
समाधिः कथितो ह्येवम् अणिमादिगुणालयः॥

योग का अर्थ ही समाधि की स्थिति है। आगमों का

लेखक के पिता टी. एस. साम्बमूर्ति शिवाचार्य संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में ध्यान-मुद्रा में

चित्र: साभार, डा. ममता मिश्र 'दाश'

यज्ञ की वेदी पर लेखक टी.एस. षण्मुख शिवाचार्य

चित्र: साभार, डा. ममता मिश्र 'दाश'

कहना है कि योग वह है जो हमें समाधि की ओर ले जाए। और समाधि वह है जिस से पशुरूपी आत्मा पति रूप भगवान् के साथ एकत्व प्राप्त करता हैं। शिव सूत्र के अनुसार समाधि प्राप्ति समस्त लोक के आनन्द के लिये ही है।

लोकानन्दः समाधिसुखम्॥

शिवसूत्र -18

अन्य सभी अंग– जैसे यम, नियम, आसन आदि, अन्य सभी अंग भगवान शिव के साथ इस ऐकत्व की ओर हमारी मदद करते हैं।

तो सभी आठ अंगों को दिए गए श्लोकों के अनुसार समझाया गया है। वैसे तो पूजा प्रारम्भ करने से पाहले योग का आचरण प्राणायाम से प्रारम्भ होता है।

प्राणायाम का लक्षण और विवरण कारणागम में बताते हुए कहा गया है कि–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणात् प्राणमयं तथा।
प्राणायामसमायोगात् प्राणायामेति सोच्यते॥
रेचकं पूरकं चैव कुम्भकं तु तृतीयकम्
प्राणायामत्रयं कृत्वा प्रत्येकं दशमात्रकम्॥

(कारणागमे)

रेचक, पूरक, कुम्भक ऐसे तीन प्रकार के प्राणायाम को दर्शाते हुए कारणागम में इन सबका अलग से प्रतिपादन किया गया है

रेचनात् रेचकं प्रोक्तं पूरणात् पूरकं तथा।
कुम्भकं तु निरोधेन प्रणवेन न्यसेत् त्रयम्॥

पूरक प्राण का अन्तःश्वसन है, कुम्भक अवधारण और रेचक है जिसके द्वारा प्राण बाहर भेजा जाता है।

आगमों के अनुसार पूरक, कुम्भक और रेचक तीनों क्रियाएँ एक साथ प्राणायाम हैं।

कितनी बार यह किया जाना है, प्रत्येक प्रक्रिया के लिए समय की मात्रा और प्रत्येक प्रक्रिया के लिए विशिष्ट मन्त्र भी आगम में निर्दिष्ट हैं।

प्राणायाम करने की विधि को बताते हुए उसी आगम में–

अनामिका कनिष्ठत्वेऽपि अङ्गुष्ठञ्च तृतीयकम्।
नासापुटं ततो बध्वा प्राणायामं समाचरेत्॥

नियम और यम—सामान्य तौर पर यह चर्यापाद के हिस्से हैं। प्रत्येक दिन पालन की जानेवाली सही दिनचर्या का विवरण आगमों के चर्या पाद में दिया गया है। वास्तव में नियम और यम क्या क्या नहींहै इसके ऊपर विस्तृत विवरण आगमों में दिया गया है।

योग और प्राणायाम के लिये आसन की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। ये दो प्रकार के हो सकते हैं। एक वह आसन है जिस पर हम बैठते हैं, उदाहरण के लिए लकड़ी का आसन, दर्भ घास की चटाई इत्यादि।

कूर्मं दर्भं तथा चर्म कम्बलं पीठमेव च।
आविकं त्वक्जमेवोक्तं सूत्रभद्रोद्भवं तथा।
सर्वकर्मार्हकं प्रोक्तं पवित्रमिदमासनम्॥

(कारणागमे)

दूसरा है योग आसन– पूजक को पूजा के लिये किस आसन में बैठना चाहिए और किस आसन में नहीं बैठना चाहिए, इसके बारे में भी आगमों में बताया गया है।

परन्तु इन आसनों के लिये भी एक स्वतन्त्र व्यवस्था है। षट् प्रकार के आसनों की सूचना देते हुए कारणागम में कहा गया–

गोमुखं स्वस्तिकं पद्मं चैवार्धचन्द्रकम्।
वीरं योगासनं चैव षड्विधं चासनोत्तमम्॥

योगासन के स्थान के वारे में मतंगपरमेश्वरागम में कहा गया–

सर्वदोषविनिर्मुक्तं निःशब्दस्थानमुत्तमम्।
सुगुप्तं सुसमं भूतं निराबाधम् अनाकुलम्॥
तत्र योगासनं बध्वा स्थिरम् एकग्रमानसः।

जैसा कि मतंगपरमेश्वरागम कहता है कि यदि कोई अपने आप को एकचित्त होकर अपने चित्त वश में ले लेता है, तो वह सभी दोषों से मुक्त हो जाता है।

अन्त में, सिद्धांत सारावली कहता है कि वह एक योगी है जो द्वादशांत में चिदाकाश में परशिव को देखता है।

स्वद्वादशान्तस्थितं परशिवं योगी चिदा पश्यति।

–सिद्धान्तसारावली

शिव का दर्शन या परंब्रह्म के साथ लीन होने के विषय में कहा गया–

तदिमं त्रिविधं रूपं स्थूलं सूक्ष्मं ततः परम्।
अस्मदाद्यमरैर्दृश्यं स्थूलं सूक्ष्मं तु योगिभिः॥
ततः परं तु यं नित्यं ज्ञानमानन्दमव्ययम्।
तं नेष्टैः तत् परैः भक्तैः दृश्यं तद्रूपमास्तिकैः॥

भगवान हम सभी को आशीर्वाद दें ताकि हम इस प्राचीन विरासत का अभ्यास कर सकें और मोक्ष के मार्ग पर आगे बढ़ सकें।

यथा कला तथा भावो यथा भावस्तथा मनः।
यथा मनस्तथा दृष्टिर्यथा दृष्टिस्तथा स्थलम्॥

कारणागम– क्रिया पाद

अगर भाव स्थिर हो तो मन भी स्थिर हो, और मन स्थिर हो तो दृष्टिया अवधारण करने की दृष्टि सही होती है।

आत्मा चैवात्मन ज्ञातो यदा भवति साधकैः।
तदा विस्मयमात्मा वै आत्मन्येव प्रपश्यति॥

***

श्री जगन्नाथ क्षेत्र और यहाँ के अखाड़े

डा. ममता मिश्र 'दाश'
संस्थापक सचिव,
प्रो. के.वी. शर्मा रिसर्च इंस्ट्च्यूट, अड्यार, चेन्नई

योग का महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक पक्ष है– शारीरिक पुष्टि। प्राचीन काल में योगाचार्यों के अखाड़ों का विवरण हमें मिलता है, जहाँ हनुमानजी की मूर्ति स्थापित मल्ल तैयार किये जाते थे। ये मल्लशालाएँ राजा के लिए सैनिकों, पहलवानों की आपूर्ति तो करती ही थी बल्कि युवकों को भी शारीरिक रूप से बलिष्ठ होने के लिए प्रशिक्षित करने का कार्य करती थी। लगभग सभी नगरों में ऐसे व्यायामशालाओं का इतिहास उपलब्ध होता है। ऐसे भी संकेत मिले हैं कि अनेक प्राचीन व्यायामशालाएँ आज हनुमानजी के मन्दिर के रूप में विख्यात हो गये हैं। ये वास्तव में योग के व्यावहारिक प्रशिक्षण केन्द्र हुआ करते थे। प्रत्येक प्राचीन नगरों में इनके इतिहास का लेखन होना चाहिए। यहाँ पुरी के प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर के आसपास के अनेक योग-शालाओं पर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है कि अपने अपने नगरों के विभिन्न योगशालाओं/अखाड़ों का इतिहास लोग लिखने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार, यह आलेख एक नयी दिशा प्रदान करता है।

योग संयोग के अर्थ में, व्यायाम के अर्थ में बहुलतया प्रयुक्त है। इस योग के आधार पर बहुत सारे ग्रन्थ रचित हुए हैं। वेद से लेकर उपनिषद् तक, भगवद्-गीता से लेकर पुराणों तक, बहुत सारे ग्रन्थों में विद्वानों ने योग का विश्लेषण कर अपना-अपना सिद्धान्त-परिवेषण किया है।

कालान्तर में यह 'योग' शारीरिक व्यायाम तक सीमित हो गया है, तो कुछ इसे 'तन्त्र' के रूप में स्वीकार करते है। यह 'तन्त्र' शब्द भारतीय परम्परा में एक विश्लेषणात्मक अर्थ के रूप में प्रयुक्त है। इन तन्त्रधाराओं को लेकर 'तन्त्रयुक्ति' जैसे ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। 'चरक-संहिता', 'सुश्रुत-संहिता' आदि आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इन तन्त्रयुक्तियों का बहुधा विश्लेषण उपलब्ध हैं। जिज्ञासा, संशय, हेत्वर्थ, अपेक्षा जैसी तन्त्रयुक्तियों को हम आधुनिक भाषा में Research methodology कहते हैं।

'अष्टाङ्गहृदय' के व्याख्याकार अरुणदत्त के अनुसार–

"तन्त्र्यन्ते धार्यन्ते आयुर्वेदार्थाः एभिः इति तन्त्राणि।"

अपि च, अन्यत्र एक स्थान पर व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है–

"तन्त्र्यते धार्यते शरीरं अनेन इति तन्त्रम्"।

"त्रायते शरीरं अनेन इति तन्त्रं शास्त्रं चिकित्सा च"

ऐसी व्याख्याएँ भी उपलब्ध हैं। इसीलिये 'तन्त्रसंग्रह' (गणित), 'तन्त्ररत्न' (ज्योतिष), पार्थसारथि मिश्र कृत 'तन्त्ररत्न' (मीमांसा), मैत्रेयरक्षित कृत

'तन्त्रप्रदीप' व्याख्या (व्याकरण), 'तन्त्र-समुच्चय' (देवालयार्चन), अभिनव कृत 'तन्त्रसार' (शैव) आदि और भारतीय परम्परा का सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ 'पञ्चतन्त्र' आदि बहुत सारे ग्रन्थ उपलब्ध हैं। लेकिन आगे चलकर यही तन्त्र शास्त्रपरम्परा को छोडकर शरीर परम्परा में प्रयुक्त होने लगा। बाद में यह और संकुचित होकर सिर्फ झाड़-फूँक में सीमित होने लगा है। और योग शारीरिक व्यायाम में सीमित हो गया है। लेकिन अर्थशास्त्र के अनुसार 'यथा शरीरं तथा ज्ञानम्' इसी आधार पर देखें, तो सिर्फ शारीरिक व्यायाम से आत्म-शुद्धि तो नहीं हो सकती है।

'योग' शब्द को भी प्रतीकात्मक के रूप में लेकर आयुर्वेद, फलित ज्योतिष, उपनिषद् आदि विषयों पर शत शत ग्रन्थ उपलब्ध हैं। जैसे लक्ष्मण कृत 'योगचन्द्रिका' (आयुर्वेद), 'योगचिन्तामणि' (आयुर्वेद), त्रिमल्ल भट्ट कृत 'योगतरङ्गिणी' (आयुर्वेद), 'योगशतक' (आयुर्वेद, बोपदेव वररुचि आदि कृत), 'योगयात्रा' (ज्योतिष), 'योगसागर' (ज्योतिष), 'योगसारणी' (ज्योतिष), 'योगसारसङ्ग्रह' (ज्योतिष), 'योगोपनिषद्' या 'अमृतानन्दोपनिषद्' (उपनिषद्), 'योगशिखोपनिषद्' (उपनिषद्), 'योगविभङ्ग-शास्त्र' (बौद्धधर्म) आदि। इसके व्यतिरिक्त योग-विषयक ग्रन्थ मथुरानाथ कृत 'योगकल्पलता', 'योगचक्र', गोवर्धन कृत 'योग-चन्द्रिका', 'योग-चिन्तामणि' (गोदावरमिश्र, शिवानन्द सरस्वती, गोरक्ष मिश्र आदि कृत) 'योगतारावली' आदि बहुत सारे उपलब्ध हैं।

ब्रह्माण्ड को भारत के कुछ महत्त्वपूर्ण अवदानों में से एक है— योग। "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"— यह योगसूत्र का वाक्य सिर्फ योगाभ्यास या शारीरिक व्यायाम के लिए नहीं, इसका उपयोग बहुधा है। यह वाक्य एक प्रतीकात्मक वाक्य है। कभी भी किसी भी कार्य के लिए अभ्यास करें, पर अगर मन का नियन्त्रण नहीं किया जाता है तो फल प्राप्ति की सम्भावना कम है। "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" यह मन्त्र प्रतीक रूप से पतंजलि का मानव जाति के लिए वरदान है।

"ये अखाड़े मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। पहला—श्रीक्षेत्र पुरी के पारम्परिक अखाड़े और दूसरे—रामानंदीय अखाड़े। दोनों अखाड़ों के उपास्य देव हनुमान ही हैं। हनुमान यहाँ महावीर नाम से पूजित हैं।"

यही योग या योगाभ्यास लोक परम्परा में प्रचलित होते होते बहुत कुछ रूप लिया है। साधारण लोगों के मन में शारीरिक व्यायाम तक सीमित रह गया है। भारतीय परम्परा में इस व्यायाम परम्परा और व्यायाम करने का सारे अनुष्ठान कभी अपनी सुरक्षा के साथ साथ जनपद और देश की सुरक्षा करते थे। इन सब क्षेत्रों को अखाड़ा[1] कहा जाता हे।

श्रीक्षेत्र की योगशालाएँ— अखाड़े

इस निबन्ध में श्रीमन्दिर तथा श्रीक्षेत्र के अखाड़ों के बारे में आलोचना की जायेगी।

उत्कल प्रान्त के प्रमुख देवता श्रीजगन्नाथ और क्षेत्र श्रीक्षेत्र। यह क्षेत्र प्रदेश का आत्मा स्वरूप है। इसी क्षेत्र में बहुत सारे अखाड़े हैं, जो अपना तन, मन, धन लगाकर श्रीक्षेत्र की और श्रीमन्दिर की

1 यह अखाड़ा शब्द प्रान्तीय ओड़िआ भाषा में 'आखड़ा' नाम से परिचित है। 'आक्रीड़' शब्द का प्राकृत रूप 'आखड़ा' या 'अखाड़ा' जो मुख्यतः व्यायाम, क्रीड़ा, मल्लविद्या, और समरविद्या के अभ्यास का स्थल है।

सुरक्षा के लिए शायद त्रयोदश शताब्दी से लगे आ रहे हैं।

ये अखाड़े मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। पहला– श्रीक्षेत्र पुरी के पारम्परिक अखाड़े और दूसरे– रामानंदीय अखाड़े। दोनों अखाड़ों के उपास्य देव हनुमान ही हैं। हनुमान यहाँ महावीर नाम से पूजित हैं। पर कुछ कुछ स्थल पर महावीर के साथ दुर्गा, व्याघ्रदेवी आदियों की पूजा भी होती है। पुरी का एक प्रसिद्ध यागा बाराबाटी यागा, जहाँ महावीर के साथ नृसिंह भगवान् की पूजा होती है।

अखाड़े का प्रधान कार्य था "मेल" का नियन्त्रण करना। एक साहि (एक निर्दिष्ट अंचल को प्रान्तीय भाषा में साहि बोलते हैं, जैसे बालिसाहि, दोलमण्डप साहि आदि) के कुछ लगभग बीस वयोज्येष्ठ व्यक्तियों को लेकर अखाड़ा बनता था।

मेल

जो लगभग मिलन शब्द का अपभ्रंश रूप है। यह मेल भी चार प्रकार के होते हैं–

गड़, कोट, यागा और गुरुज।

1. **गड़**– जहाँ लगभग एक सौ युवकों को सामरिक शिक्षा दी जाती थी।
2. **कोट**– यहाँ लगभग पाँच सौ युवकों को सामरिक शिक्षा दी जाती थी। लेकिन ये सामरिक कला में निपुण युवक हमेशा छिपे हुए रहते थे। अप्रत्याशित आपदा के लिए अपने आपको तैयार रखते हुए ये अपने अपने निजी कार्य में व्यस्त रहते थे।
3. **यागा**[2]– श्रीमन्दिर और श्रीक्षेत्र की सुरक्षा के लिए बनाया गया यह 'यागा' मल्लयोद्धाओं का अखाड़ा था। युवकों से प्राप्तवयस्क तक सभी मल्लयुद्ध की तालीम प्राप्त करते थे।
4. **गुरुज**– कुछ राज कर्मचारियाँ और 'साहि' के योग्य लोग इसका सभ्य होते थे। इनका कार्य श्रीजगन्नाथ क्षेत्र और श्रीमन्दिर की सुरक्षा पर ध्यान देना।

समय क्रम में सब मिलकर अखाड़ों में मिल गये हैं और इन सबका नाम 'यागा' नाम से परिचित होने लगा है।

यह यागा संस्था भी चार दलों में बांटे गए थे।

1. **राज अंगिरा**– जो साक्षात् गजपति राजा की सुरक्षा कार्य में व्यस्त थे।
2. **बक्सि खंजा**– गजपति राजा के मुख्य सेवक बक्सि के सुरक्षा कर्मी थे।
3. **बढति**– साधु, संत, संन्यासियों के द्वारा प्रतिष्ठित स्थल।
4. **बहुमान्**– (बहुमान्य) कुछ वदान्य व्यक्तियों की सहायता से बनी यह संस्था भी श्री क्षेत्र की सुरक्षा के लिए तैयार रहती थी।

मेल और अखाड़े मिलकर जो यागा का स्थान लिया उनमें से कुछ मठों में भी परिवर्तन हो गया है।

परम्परागत ये सारे मठ और यागा स्थल बौद्धिक शिक्षा क्षेत्र हुआ करता था। यहाँ व्यायाम और मल्लविद्या के साथ साथ समर कला सिखाई जाती थी। नृत्य, गीतादि शिक्षा के लिए जैसे गन्धर्व पीठ भी यही था।

साधु लोगों के लिए एकत्र बैठकर अध्यात्म चर्चा का क्षेत्र था। तो बौद्धिक, शारीरिक और मानसिक

2 सं. जगत्– जगह (पार्शी)– जागा। समान उच्चारण के कारण यह शब्द 'यागा' रूप लिया होगा। लेकिन सिर्फ इसी क्षेत्र में यह शब्द 'यागा' नाम से परिचित है। अन्य अवसर पर स्थान के अर्थ में 'जागा' ही प्रयुक्त होता है।

विकास के लिए दरबार, मल्लशाला, रंगमंच, नृत्यशाला सब कुछ यह यागा ही था।

पहले तो अखाड़े स्थानीय युवाओं में सीमित रहा। पर बाद में अयोध्या के हनुमान गढ़ी अखाड़े की स्वीकृति से कुछ अखाड़े श्रीक्षेत्र पुरी में स्थापित होने लगे। इन अखाड़ों का मुख्य उद्देश्य था श्री क्षेत्र और श्रीमन्दिर की सुरक्षा करना, जो बाद में मठों में परिवर्तित हो गये।

ज्यादा तरह नागा साधुओं से बने ये अखाड़े अपने आपको समर्थ रखने के लिए हमेशा व्यायाम में व्यस्त रहते थे।

यागा/ आखड़ा /व्यायामशाला

युवकों के सामरिक शिक्षा के लिए प्रधान क्षेत्र। इसके लिए यहाँ पर प्रांगण प्रस्तुत किया जाता था, जो चतुष्कोण था या लगभग एक वर्गाकार क्षेत्र था। लम्बाई और चौड़ाई 28-30 फीट और गहराई 5-7 फीट। इसे बनाने के समय मिट्टी में कुछ औषधीय द्रव्य मिलाया जाता था। इस प्रक्रिया को कमण बोलते हैं। यह कमणमिट्टी, जो व्यायाम शिक्षा पाते पाते या अभ्यास करते करते अगर गिर जाते तो शरीर को उपशम देनेवाली औषधियों से भरी रहती थी। हर व्यायाम क्षेत्र के पास एक पुष्करिणी हुआ करती थी। ताकि सबको सन्तरण की शिक्षा मिले। और व्यायाम के बाद स्नान करना भी जरूरी है।

शिक्षा की गुणवत्ता के लिये 'वादिसाही' परम्परा भी प्रचलित थी। इस वादिसाही में साहियों के बीच वाद प्रतिवाद के रूप में प्रतियोगिता चलती थी, ताकि अपने आपको योग्य प्रमाणित करने के लिये सबके मनमें आकांक्षा बढे। अणनी कला कौशल दिखाने के लिये एक अवसर भी सबको मिले।

ये सब अखाड़ों या यागा स्थलों पर मुख्य उपास्य देवता हनुमान् ही है। लेकिन हर स्तर पर इन सब स्थलों का सम्बन्ध श्रीजगन्नाथ मन्दिर और श्रीजगन्नाथ उपासना के साथ प्रत्यक्ष रूप में था। मतलब इनमें से कुछ स्थल परोक्ष भाव से श्रीमन्दिर और इसकी सुरक्षा के लिये बने थे तो कुछ सिर्फ श्रीमन्दिर की सुरक्षा के लिये ही बने थे। कुछ 'यागा' स्थल एसे थे जहाँ सिर्फ युवाओं को सामरिक शिक्षा दी जाती थी, इन सब जगहों का नाम गड़ पड़ा है। ऐसे लगभग 12 गड़ श्रीक्षेत्र में प्राप्त है जैसे मल्लीगड़, लुहागड़ आदि। बाद में इन गड़ शब्दों के साथ यागा शब्द संयुक्त होकर मल्लीगड़ यागा, लुहागड़ यागा, कदम्ब गड़ यागा जैसे परिचित होने लगे हैं। श्री मन्दिर और श्रीक्षेत्र की सुरक्षा के लिये श्रीक्षेत्र के चारों तरफ मतलब चारों प्रवेश द्वार में चार 'कोट' उपलब्ध हैं। पूर्व दिशा में 'मरिची कोट', पश्चिम दिशा में 'भगवती कोट', उत्तर दिशा में 'इन्द्रद्युम्न कोट', और दक्षिण दिशामें 'नागाकोट'।

यहाँ पर कोट का मतलब है एक छोटा सा गड़ या दुर्ग। यहाँ के सभ्यों का काम चार प्रकार के होता था

1. स्वास्थ्य का यत्न लेना
2. मानसिक स्तर पर अपने आपको स्वस्थ रखना
3. शारीरिक और मानसिका स्वस्थता के लिये गान्धर्व कला जैसे नृत्य, वाद्य, संगीत आदि में निपुण होना
4. श्रीक्षेत्र की सुरक्षा करना। चारों दिशाओं में चार मुख्य कोट के अलावा बलराम कोट, कालिका कोट, अलार कोट जैसे और बारह कोट भी श्रीक्षेत्र में था।

इतिहास से कुछ पन्ने–

1. जगत प्रतिहारी यागा–

केसोमारु नामक एक मुगल लुटेरा श्रीमन्दिर का लुण्ठन कर के जब लौट रहा था तब जगत प्रतिहारी नाम के एक मल्ल योद्धा अपने एक शिष्य जटि पण्डा के साथ इस केसोमारु का पीछा करते करते श्रीक्षेत्र के लगभग 40 कि.मि. दूरी पर पिपिलि नामके एक जगह पर छिप-छिप कर केसोमारु को काबू किया और लुण्ठित द्रव्यों को उससे छुड़ाकर गजपति को भेंट दिया था। उन्हीं के नाम पर महाराजा ने एक यागा बनाया और उनको पुरस्कार के रूप में दिया। इन्हीके नाम पर इस यागा का नाम जगत प्रतिहारी यागा पड़ा है।

2. खुण्टिआ यागा

गजपति कपिलेन्द्र देव (1435-1466) की सुरक्षा के लिये इस यागा के 25 मल्लयोद्धा हमेशा तैयार रहते थे।

3. हिज्जिळि यागा

अफगान के लुण्ठनकारियों को हिज्जिळि बोलते हैं। इन हिज्जिळियों से श्रीक्षेत्र की सुरक्षा करने के लिये एक सौ मल्ल योद्धाओं को लेकर एक गड़ बना था, जिसका सेनापति थे गोपीनाथ बड़जेना और गड़ का नाम रखा गया हिज्जिळि गड़। बाद में यह गड़ हिज्जिळि यागा नाम ले लिया।

4. लुहागड़ यागा

गजपति कपिलेन्द्र देव की युद्धयात्रा में इस यागा के मल्लयोद्धा सामिल थे।

5. डुबेइ यागा

पहले तो यह एक बैठक स्थल हुआ करता

THE NUCKI-KA-KOOSTI, AT BARODA.

था। आदि शंकराचार्य के द्वारा प्रतिष्ठित मठ की सुरक्षा इस यागा के सभ्यों का दायित्व था।

6. गण्डमाळ यागा

इसका पूर्व नाम गण्डिमाळ यागा था। काळिकादेवी साहि स्थित दक्षिणकाली अखाड़े के कुछ मल्लयोद्धा श्रीक्षेत्र की सुरक्षा के लिये हरिणी घाट जो श्रीक्षेत्र का मुख्य प्रवेश द्वार है, पर उपस्थित रहते थे। हसिम खाँ अपने कुछ 17 सैनिकों को साथ लिये जब उसी रास्ते पर प्रवेश कर रहा था, तब दक्षिणकाली के अखाड़े के कुछ मल्लयोद्धा उन पर आक्रमण करके उनको मार डाला। उनके सर को शरीर से अलग कर के फेंक दिया और मस्तकविहीन शरीरों (प्रान्तीय भाषा में गण्डि बोलते हैं) को लेकर गजपति महाराज को भेंट के रूप में दिया। इन्होंने मस्तकविहीन शरीरों को माला जैसा सजा कर रखा था। गजपति महाराज खुस होकर इनके लिये दक्षिणकाली अखाड़े के पार्श्ववर्ती अंचळ में एक स्थान देकर उन सबके लिये आस्थान बनाया। जिसका नाम पड़ा गण्डिमाळ यागा, जो बाद में गण्डमाळ यागा के रूप में परिचित हुआ।

7. अडंग तिआड़ि यागा

गजपति दिव्यसिंह देव (1689-1712) के समय श्रीक्षेत्र पुरी के 'शरधाबालि' अंचल के निकट

कुम्भारपड़ा नामक एक जगह था, जो जंगल से भरा रहता था। वहाँ बहुत डकायत यात्रियों के ऊपर आक्रमण कर उनको लूटते थे। इस डकैती में हरिणीघाट स्थित पठाण लोग संपृक्त थे। यात्रियों की सुरक्षा के लिये दिव्यसिंह देव यागाओं के मल्ल योद्धाओं से परामर्श किया था। तभी श्रीमन्दिर के कुछ ही दूरी पर स्थित गौड़बाड़ साहि के नाथ तिआड़ि (त्रिपाठी शब्द का अपभ्रंश रूप) ने आगे आकर जिम्मेदारी ली और बोला 'मैं अकेला पर्याप्त हूं'। वे हमेशा पेड़ के ऊपर छुप कर रहते थे। वहीं से कूदकर डकायतों की हत्या करते थे। इसी से खुस होकर गजपति महाराज ने 'अड़ंग तिआड़ि यागा' बनाया।

8. राहास महान्ति यागा, जमेइ खुण्टिआ यागा—

ईसाई प्रचारक पादरियाँ जो श्रीजगन्नाथ धर्म के विरुद्ध अपप्रचार करते थे, उनके प्रतिवाद स्वरूप आवाज उठाते थे। इन लोगों के कार्यों में प्रसन्न होकर गजपति महाराज राहास महान्ति यागा, जमेइ खुण्टिआ यागा आदि बनाया था।

श्री जगन्नाथ मन्दिर और श्रीजगन्नाथ क्षेत्र की सांस्कृतिक सुरक्षा अभी भी ये सब यागा, मठ आदि सांस्थाएँ करती हैं। श्री मन्दिर के कुछ कुछ उत्सवों पर मठ के साथ साथ यागा घरों से भी पूजा सामग्री जाती है। जैसे मल्लीगड यागा, जाइगड यागा से श्रीमन्दिर के लिये फुल, माजणा यागा से प्रति गुरुवार को दही, हलदी आदि आते हैं। और प्रति गुरुवार भगवान् की उत्सवमूर्ति मदनमोहन इस मठ को जाते हैं। माळि यागा से फूल की माला और चूल आती है।

अल्लिकोट यागा श्रीमन्दिर की छोटी-छोटी मरम्मत कार्य करता है।

श्रीक्षेत्र में अनुष्ठित रामलीला कुछ यागा घरों के सभ्यों के द्वारा अनुष्ठित होती है।

श्रीक्षेत्र पुरी के अभी भी बहुत सारे यागा पूर्ण रूपसे परिचालित हैं। वहाँ पर अभी भी युवा लोग मल्लशिक्षा करते हैं। यहाँ गुरु शिष्य परम्परा का अनुसरण करते करते मल्लयोद्धा अभी भी प्रशिक्षित होते है। यहाँ साम को सामूहिक रूप में हनुमान चालीसा का पाठ होता है। हर यागा के इष्ट देव महावीर जो हैं। हनुमान चालीसा के साथ समूह रूपसे अन्य प्रार्थना भी होती है। कुछ अखाड़ों में शिक्षार्थी रह कर मल्ल शिक्षा करते हैं। अभ्यास दिन में दो वार चलता है। हर अभ्यास से पहले गुरु का चरणस्पर्श अनिवार्य है। जाति वर्ण निर्विशेष से यहाँ पर मल्लयोद्धा आते हैं। ज्यादा तरह श्रीमन्दिर के सेवक सम्प्रदाय इसमें संश्लिष्ट रहते हैं। श्री जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा देवी की काष्ठप्रतिमा को उठाकर लेने में, विभिन्न अवसर पर उत्सवमूर्ति को पालकी में लेने में, श्रीमन्दिर के ऊपर लगे पाताका का परिवर्त्तन करने में, एकादशी तिथि पर ऊपर दिया लगाने में मानसिक स्थिरता के साथ शारीरिक शक्ति की आवश्यकता होती है। इसीलिये प्रायतः श्रीजगन्नाथ के सेवक सम्प्रदाय के हर व्यक्ति मल्लशिक्षा प्राप्त करते हैं। इन सब अनुष्ठान स्थानीय लोगों की मदद से चलता है। कुछ व्यक्ति मल्लशिक्षा नहीं करते पर इसका सभ्य बनकर यागा की देखभाल में आर्थिक सहायता करते हैं। स्थानीय व्यक्तियों के काम काज में ये सब मिल जाते हैं और काम काज में सामिल हो जाते हैं।

पारम्परिक योग यहाँ व्यायाम के रूप से ज्यादा जीवित है। योग इसका अगर सदुपयोग हो तो वह सबके लिये सुयोग बन सकता है। पर अगर इसका दुरुपयोग हो तो दुर्योग भी ला सकता है।

सहायक पुस्तक :

सुरेन्द्र कुमार मिश्र, पुरीर साहियात (ओड़िआ), S.B. Publications, Vinod Vihari, Katak, 2007

***

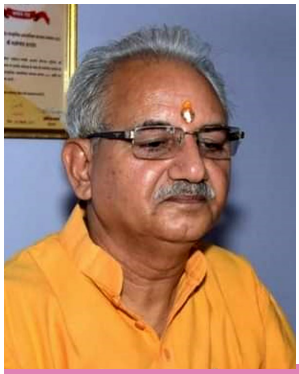

योग की अवधारणा

पं. मार्कण्डेय शारदेय
सनातन ज्योतिष, पाटलिग्राम एपार्टमेंट, शहीद भगत सिंह पथ, बजरंगपुरी, गुलजारबाग, पटना-800007

इस योग-विशेषांक में हमने अभी तक योग के विशद सिद्धान्तों तथा ऐतिहासिक क्रम का विवेचन किया, किन्तु वास्तव में जब तक योग का स्वयं अभ्यास न किया जाये, तबतक इसकी सूक्ष्मता समझ पाना कठिन है। अतः योग को सबसे पहले हमें उदाहरणों के जरिये सतही रूप में समझना होगा, तब हम उसकी गहराइयों में उतर सकेंगे। यहाँ योग के व्यावहारिक पक्ष को उभारते हुए लेखक ने संक्षेप में योग की अवधारणा का निरूपण किया है। साथ ही उन्होंने योग के आठ अंगों को सरलता से समझाया है। इस अंक को पढ़ने के लिए पाठक इस आलेख को सर्वप्रथम पढ़ें तो उनके लिए अगला चरण सुबोध होता जायेगा

योग का मुख्य अर्थ जोड़-जुड़ाव है। यह युजिर् योगे (युज्+घञ्) से निष्पन्न है। अब प्रश्न है कि जुड़ाव किससे, क्यों और कैसे? 'किससे' तो इसका उत्तर ब्रह्म से जीव का है। दरअसल जीव ब्रह्म का ही अंश है। सृष्टि के विकास में वह जीव अपने परम तत्त्व अर्थात्, ब्रह्म से ठीक वैसे ही अलग हुआ है, जैसे किसी कार्य की पूर्ति के लिए गृहस्वामी या पिता अथवा किसी संस्था का सर्वोच्च अधिकारी ने सप्रेम किसी सदस्य को कहीं भेजा हो। प्रेषक और प्रेषित दोनों दूरी पसन्द करनेवाले नहीं, दोनों में बड़ा प्यार है। परन्तु; सृष्टि की सुरक्षा के लिए दायित्व का निर्वाह आवश्यक होने से भेजना– जाना जरूरी था। जैसे घर से दूर गए व्यक्ति को अपनों की याद सताती है और काम पूरा कर जल्दी आने का भरोसा देता है, वैसे ही जीव भी करता है।

ये जीव एक-दो नहीं असंख्य रूप में असंख्य क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न कर्तव्य के साथ चले हैं। हाँ; इनमें होशियार बहुत कम हैं। कुछ ही हैं, जो अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह समझते हैं। इनमें सर्वाधिक ऐसे सदस्य हैं, जो कार्यक्षेत्र में इस कदर रम गए कि उन्हें पता ही नहीं कि जहाँ हैं, वह अपना वास्तविक घर नहीं। आदेश मिलते ही न चाहकर भी अपने घर लौटना भी है। जिनको जाने की जितनी जल्दी है, वे निर्लिप्त भाव से जल्दी-जल्दी दुनियाबी कामों को समेटने की फिराक में लगे रहे।और लोग आज का

काम कल पर टालते मदहोश समय काटते जा रहे।मानो; उनकी बदली होने ही वाली नहीं।इसी दफ्तर, दुनिया में ही बरकरार रहेंगे। खैर; आत्मा को परमात्मा से जोड़ने के लिए हमारे विज्ञानी पूर्वजों ने एक साधन-विशेष का आविष्कार किया है, जिसे योग-साधना कहते हैं।

यह योग-साधना पहले हमें दुरुस्त रहना सिखाती है। सबसे पहले यम की कक्षा प्रारम्भ होती है। यह बताती है कि हमें मन, वाणी तथा कर्म से हिंसा, असत्य, चोरी, काम-विकार एवं संचय से दूर रहना होगा। क्योंकि; जीव में मोह पैदा करनेवाली प्रवृत्तियाँ इन्हीं से उत्पन्न होती हैं। यमरूपी बाह्य प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण हो जाने पर सांसारिक बन्धन कमजोर होने लगते हैं।

अब आई नियम की बारी। इसके अन्तर्गत बाहर-भीतर से शुचिता, अनुकूलता-प्रतिकूलता में भी सन्तोष, शरीर व इन्द्रियों को व्रतोपवास आदि से सहनशील बनाने के लिए तपाना, आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन व आत्मचिन्तन तथा परमात्मा अपना लें, इसके लिए उनके अनुकूल चेष्टा करना—यह नियम है, दूसरी कक्षा है।

यम-नियम से मन-सहित इन्द्रियाँ कमजोर न हों, इन्हें बल मिलता रहे, ठंड-गरमी का भी प्रभाव न पड़े, इसके लिए विविध आसन बताए गए। अनेक आसनों में सुखपूर्वक देर तक जिसपर बैठ सकें, उसका चुनाव कर लेना है। आसन-सिद्धि हो जाने पर तीसरी कक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त हो जाती है।

अब चौथी कक्षा, प्राणायाम की बारी आती है। इसमें विधिपूर्वक श्वास-प्रश्वास की क्रिया होती है। साँस खींचना (कुम्भक), साँस भीतर भरना (पूरक) तथा साँस छोड़ना (रेचक) होता है। इससे पाप-अज्ञान दूर होते हैं और मन, इन्द्रिय एवं प्राणों का संयमन होता है।

इसके अनन्तर प्रत्याहार नामक पाँचवीं कक्षा प्रारम्भ होती है। इससे इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है।

इतनी कक्षाएँ बाह्य से आन्तरिक यात्रा के रूप में रहीं। इसलिए इन्हें बहिरंग साधना भी कहते हैं।जब हम धारणा तक में परिपक्व हो जाते हैं, तब जिस ध्येय का ध्यान करेंगे, उसमें स्थिरता आएगी। ध्यान करते-करते जब ध्याता और ध्येय दोनों एकाकार हो जाएँगे। अर्थात्; हम जिसका ध्यान कर रहे हैं, उसके साथ तादात्म्य स्थापित हो जाए तो यही समाधि है।

समाधि तक पहुँचकर योगी जीवन्मुक्त और पारदर्शी व त्रिकालज्ञ हो जाता है। वह जीवन-मरण से अलग हो जाता है।

इन आठों कक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए परम सिद्ध गुरु की आवश्यकता होती है। क्योंकि; रास्ता आसान नहीं, पग-पग पर खतरे हैं। सम्भव है; इसके लिए दूसरा जन्म भी लेना पड़े। यदि इस शरीर से हम कुछ ही कक्षाओं में सफलता पाते हैं और देह छूट जाती है तो पुनर्जन्म में उतना अभ्यास बना रहेगा, ठीक वैसे ही, जैसे कोई मैट्रिक आदि परीक्षाएँ पास कर दस-बीस वर्ष बाद भी आगे पढ़ना चाहे तो पढ़ सकता है, पास कर सकता है।

हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा आविष्कृत यह विद्या हम भारतीयों की अनमोल दौलत है। इसी के बल पर हमारा देश सुसंस्कृत, सुव्यवस्थित और प्रबुद्ध रहा।आज भी यह भारत को भौतिकता एवं आध्यात्मिकता से सम्पन्न करने में समर्थ है।

***

योग के आद्य प्रवर्तक भगवान् हिरण्यगर्भ ब्रह्मा

श्री महेश शर्मा 'अनुराग'
सनातन धर्म के अनछुए प्रसंगों पर शोधकर्ता। 18. स्नेह नगर, सुभाष नगर के पास, उज्जैन, मध्यप्रदेश पिन 456010

भारतीय परम्परा सभी शास्त्रों का प्रवर्तन देवताओं से मानती है। उपनिषद् का कथन है कि सभी शास्त्र ब्रह्म के निःश्वास के रूप में हैं। पुराण परमपरा के आधार पर विभिन्न शास्त्र के प्रवर्तन का श्रेय भिन्न भिन्न देवता को देती रही है। इनमें योग के प्रवर्तक ब्रह्माजी माने गये हैं। महाभारत हिरण्यगर्भ को योग का प्रवर्तक कहता है। अद्वैतवादी हिरण्यगर्भ का अर्थ नासदीय सूक्त के आधार पर बीजरूप में अवस्थित प्रथमोत्पन्न ईश्वर को मानते हैं, किन्तु महाभारत एवं अन्य पुराण हिरण्यगर्भ से ब्रह्मा का अर्थ लेते हैं। वास्तव में पुराणों में आगम की ब्राह्मशाखा भी हमें मिलती है, जो विलुप्त हो गयी है। उस शाखा के ग्रन्थ आज नहीं मिलते हैं, पर पुराणों में बहुत कुछ सन्दर्भ आते हैं। इसी ब्राह्मशाखा की एक झलक हमें इस आलेख में मिलता है, जिसमें चतुर्मुख ब्रह्मा को योगशास्त्र का प्रवर्तक माना गया है।

यद्यपि योग की सनातन परम्परा भारत में अनादि है परन्तु योग-दिवस के रूप में इस परम्परा को विश्व में मान्यता मिलने पर आम जन भी इस योग पन्थ से आकर्षित है।

हम जीवन में उन्नति हेतु कई प्रक्रियाओं को अपनाते हैं परन्तु उसके आविष्कर्ता को नहीं जानते। अहिर्बुध्न्य संहिता के अनुसार जिस प्रकार पांचरात्र के भगवान विष्णु और पाशुपत मत उपदेशक भगवान शिव है उसी क्रम में योग के भगवान् हिरण्यगर्भ है।

महाभारत के शान्तिपर्व में 349वें अध्याय की श्लोक संख्या 1 के अनुसार सांख्य, योग, पाञ्चरात्र यानी वैष्णवागम के ग्रन्थ, वेद तथा आरण्यक ये लोकों में प्रचलित हैं अर्थात् उपासना के प्रमुख मतों में ये पाँच सबसे ऊपर है।

साख्यं योगः पाञ्चरात्रं वेदारण्यकमेव च।
ज्ञानान्येतानि ब्रह्मर्षे लोकेषु प्रचरन्ति ह॥

आगे इसी अध्याय में भगवान हिरण्यगर्भ ब्रह्मा योग के प्रवर्तक है घोषित हैं

सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते।
हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता न्यान्यः पुरातनः॥

भागवत पुराण, 05.19.13 में भी इसे दुहराया गया है कि योग में निपुणता भगवान् हिरण्यगर्भ के द्वारा प्रतिपादित किया गया।

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत्।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो
भक्त्यादधीतोज्झितदुष्कलेवरः॥

भगवान हिरण्यगर्भ की आद्य महिमा ऋग्वेद में "हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्" मन्त्र में प्रतिपादित है।

महाभारत, शान्तिपर्व के 342वें अध्याय मे भी भगवान् हिरण्यगर्भ की महिमा स्पष्ट है—

हिरण्यगर्भो द्युतिमान् य एषच्छंदसि स्तुतः।
योगैः सम्पूज्यते नित्यं स च लोके विभुः स्मृतः॥

ये वही भगवान् हिरण्यगर्भ है जिनकी स्तुति वेदों में गायी गयी है। योगी लोग नित्य इनकी पूजा करते हैं, जो लोक में विभु के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार हिरण्यगर्भ और योग का सम्बन्ध महाभारत—जैसे प्राचीन तथा सम्मान्य महाकाव्य में स्पष्ट है।

अन्य ग्रन्थों में मार्कण्डेय पुराण में पितृदेवों की प्रसिद्ध स्तुति में उन्हें योगचक्षु ब्रह्मा बतलाया है। इसी प्रकार, मत्स्य-पुराण 107/7/8 में लिखा है

तौ तत्र विचरन्तौ स्म पुष्करै विश्वतोमुखम्।
योगिनां श्रेष्ठमासाद्य दीप्तं ददृशतुस्तदा॥

इस प्रकार ब्रह्माजी योगियों में श्रेष्ठ कहे गए हैं।

वामन-पुराण, 65.51 में पूरी तरह स्पष्ट लिखा है,

तावेवमुक्तौ पुत्रेण योगाचार्यं पितामहम्।

ये बहुत कष्टदायक और विस्मयकारी है कि योग पर बड़े-बड़े आलेख लिखनेवाले लिखते हैं कौन हिरणगर्भ? कुछ विद्वान् हिरण्यगर्भ भगवान सूर्य को प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं। वस्तुस्तिति यह है कि हिरण्यगर्भ प्रजापति ब्रह्मा के अतिरिक्त कोई नहीं हैं। इस विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं

महाभारत, शान्तिपर्व, 308.18 में ब्रह्मा के पर्याय का उल्लेख हुआ है—

हिरण्यगर्भो भगवानेष बुद्धिरिति स्मृतः।
महानिति च योगेषु विरिञ्चिरिति चाप्यजः॥

हिरण्यगर्भ और विरंचि ब्रह्माजी के ही नाम है। यहाँ भगवान् हिरण्यगर्भ को महान्, बुद्धितत्त्व के अधिष्ठाता और अज कहा गया है।

महर्षि पतंजलि ने जिस योगशास्त्र को सृजित किया वह हिरण्यगर्भशास्त्र पर आधारित है। विद्वानों का मत है कि हिरण्यगर्भ शास्त्र लुप्त हो चुका है।

योगशास्त्र को ब्रह्माजी ने ही रचा, इस बात का प्रमाण है कि चारों वेद, उपवेद, पुराण, इतिहास और अन्य धर्म ग्रन्थ सदेव उनसे ही कल्प के आदि में प्रकट होते हैं फिर योगशास्त्र के उद्भव कर्ता हिरण्यगर्भ ब्रह्मा क्यों नहीं? निश्चित रूप से योगशास्त्र के आदि उपदेष्टा वे ही कहे जाएँगे।

वायु-पुराण, योगवासिष्ठ और अन्य ग्रन्थों के अनुसार हिरण्यगर्भ ब्रह्मा अपनी आयु के सौवें दिवस के पूर्ण होने पर सभी ऋषि मुनियों, योगियों को योग का उपदेश देकर सभी को और सभी लोकों को स्वयं में लीन कर स्वयं को परब्रह्म में लीन कर लेते हैं।

यूं तो ब्रह्माजी के अनेकानेक ध्यान मन्त्र हैं परन्तु पद्मपुराण के सृष्टिखंड में 15.188-89 में बहुत सुंदर ध्यान मन्त्र है

हृत्पद्मकर्णिकासीनं रक्तवक्त्रं सुलोचनम्।188।।
परितो द्योतितमुखं ब्रह्मसूत्रकटीतटम्।
चतुर्वक्त्रं चतुर्बाहुं वरदाभयहस्तकम्।189।।

अर्थ ब्रह्माजी हृदय कमल की कर्णिका पर विराजमान हैं। उनके मुख तेजस्वी हैं और नेत्र सुंदर है। कटि पर्यंत ब्रह्मसूत्र विद्यमान है। वे वर और अभय की मुद्राएँ धारण किए हैं।

परिणाम आगे लिखा है

योगजा मानसी सिद्धिर्ब्रह्मभक्तिः परा स्मृता।

अर्थात् ब्रह्माजी की योगज पराभक्ति श्रेष्ठ कही गई है।

ऐसे योगशास्त्र के आद्य प्रवर्तक आदि उपदेशक भगवान् हिरण्यगर्भ ब्रह्मा को पवित्र स्मरण के साथ दंडवत् प्रणाम है।

***

योग से जीवन की कर्तव्यनिष्ठ अवस्था

डा. अजय शुक्ला

व्यवहार वैज्ञानिक, गोल्ड मेडलिस्ट, इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स मिलेनियम अवार्ड, अन्तरराष्ट्रीय ध्यान एवं मानवतावादी चिंतक, विश्व हिंदी महासभा, राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राष्ट्रीय मनोविज्ञान सलाहकार प्रमुख, अखिल भारतीय हिंदी महासभा, नई दिल्ली, भारत, प्रबंध निदेशक, आध्यात्मिक अनुसंधान अध्ययन एवं शैक्षणिक प्रशिक्षण केंद्र, देवास– 455221, मध्य प्रदेश।

शास्त्र कहता है कि योग मन की क्रियाओं को संयमित करती है। हमारा मन हमेशा चंचल अवस्था में भटकता रहता है, उसकी गति भी असीम है। बौद्धकवि अश्वघोष ने इसे बिगड़ैल घोड़ा कहा है। आज की स्थिति में विबिन्न प्रकार के अन्तर्द्वन्द्वों में फँसा व्यक्ति अपने कर्तव्यपथ पर किस प्रकार आगे बढ़कर अपने लक्ष्य पर पहुँचता है यह भी योग के सन्दर्भ में प्रतिपादेय है। योग के सूत्र हमें लक्ष्य को पाने की प्रक्रिया सिखाती है, हमारे कर्तव्यों को पूर्ण करने में सहायता करती है, यह योग का व्यावहारिक पक्ष है। लेखक की मान्यता है कि 'योग द्वारा कर्तव्यनिष्ठ अवस्था की ओर प्रस्थान करने से पूर्व सार्थक प्रयास एवं परिणाम के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित करने की पुरजोर कोशिश करनी चाहिए जिससे साधक एवं साध्य के मध्य एकाकार भाव की परिणिति का यथोचित रूप से सदुपयोग किया जा सके।'

जीवन के उत्कर्ष का लक्ष्य लेकर चलना और श्रेष्ठ चिन्तन की व्यवस्था से चित्त को निर्मल करते हुए कर्म के व्यावहारिक स्वरूप तक पहुँच जाना सार्थकता की दिशा में अग्रसर होने का स्पष्ट लक्षण होता है। योग द्वारा कर्तव्यनिष्ठ अवस्था की ओर प्रस्थान करने से पूर्व सार्थक प्रयास एवं परिणाम के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित करने की पुरजोर कोशिश करनी चाहिए जिससे साधक एवं साध्य के मध्य एकाकार भाव की परिणिति का यथोचित रूप से सदुपयोग किया जा सके।

प्रबल पुरुषार्थ का श्रेष्ठ संकल्प

मानवीय चिन्तन की उत्कृष्टता का जीवन्त प्रमाण कर्मगत स्थितियों के प्रति गहरी निष्ठा से जुड़ा होता है। व्यक्तिगत जीवन की वर्तमान अवस्था का मूल्यांकन उस समय आसान हो जाता है जब कर्तव्यपरायणता की मन:स्थिति निर्मित हो जाती है। एक पथिक की गतिशीलता का आशय उसके प्रस्थान बिंदु से गन्तव्य तक लगाया जाता है जबकि वह यात्रा की अनुभूतियों को उपलब्धि की दृष्टि से महत्त्व प्रदान करता है। पुरातन काल से साधक और साध्य की पवित्रता को समाज में विशिष्ट दर्जा प्राप्त रहा है जो आज भी सम्मान का द्योतक है। किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त लक्षण को जीवन में समाहित करना प्रथमत: अनिवार्य आवश्यकता होती है।

समाज के विभिन्न आयामों में स्वयं की उपस्थिति प्रबल पुरुषार्थ के व्यावहारिक स्वरूप द्वारा सुनिश्चित की जा सकती है। कर्तव्यनिष्ठ स्थिति के निर्माण की चाहत

लगभग सभी व्यक्तियों में होती है लेकिन इस सकारात्मक दिशा की ओर कदम बढ़ाने का साहस कुछ ही व्यक्तियों में दिखाई पड़ता है। कर्मक्षेत्र के अन्तर्गत प्रविष्ट हो जाना और अपनी अवस्था को एकाग्रता से संबद्ध कर देना वास्तविक रूप से समर्पण का पर्याय होता है। जब साधक और साध्य के मध्य एकाकार भाव उत्पन्न हो जाता है, तब यह स्वीकार कर लिया जाता है कि कर्तव्यनिष्ठ अवस्था विकसित हो गयी है।

कर्मजगत् का दार्शनिक बोध पुरुषार्थ के योगदान को सदा उच्च श्रेणी में रखने का प्रयास करता है; क्योंकि निःस्वार्थ भाव का बीजारोपण व्यक्तिगत व्यवहार के अन्तर्गत सूक्ष्म रूप से सन्निहित रहता है।

आज के आधुनिक युग में इस बात पर निरन्तर बहस जारी है जिसमें कर्म क्यों किया जाए? इस कार्य को करने से क्या लाभ होगा? आखिर कब तक सब कुछ मैं ही करता रहूँ? यदि मेरा यह कर्तव्य है तो मुझे अधिकार कौन देगा? और वह अधिकार कब तक मिल सकेगा? इत्यादि प्रश्न कार्य करने के पूर्व ही अन्तर्मन में विद्रोह पैदा कर दिया करते हैं।

सामान्यत: व्यक्ति के भीतर हलचल मचाने वाले प्रश्न न्यायोचित व्यवस्था के लिए तर्क-वितर्क करने में संलग्न रहते हैं जिसके समर्थन में समय, शक्ति एवं सामर्थ्य का कहीं अपव्यय न हो जाए। यह बात प्रमुख रूप से चिन्ता के कारणों में सम्मिलित की जाती है। स्वयं की सक्षमता के प्रति आस्था रखते हुए विशुद्ध चिन्तन की दिशा में व्यावहारिक कार्य करना होगा जिससे लक्ष्य का निर्धारण किया जा सके। सकारात्मक स्थितियों के अन्तर्गत पुरुषार्थ करने की मनोवृत्ति प्राय: व्यक्ति को उर्ध्वगामी अवस्था की ओर अभिमुखित करती है। कार्यक्षेत्र में एकाग्रता के कारण व्यक्तिगत जीवन के अन्तर्गत उतार-चढ़ाव की स्थितियाँ न्यूनतम होने लगती हैं और सार्थक परिणाम की प्राप्ति सम्भव हो जाती है।

विशुद्ध चिन्तन की पवित्र स्मृति

कर्तव्य के मार्ग पर गतिशीलता का अर्थ है कि व्यक्ति के द्वारा स्वयं के विकास का मानदंड किसी न किसी रूप में निर्धारित कर लिया गया है। सामान्यत: यह देखा गया है कि जो लोग जीवन में कुछ विशिष्ट करना चाहते हैं, सर्वप्रथम वे अपना लक्ष्य बनाते हैं और उसके पश्चात् उस निश्चित दिशा में अग्रसर होते हैं। जीवन में आगे बढ़ने के लिए एक उपयुक्त विचार की आवश्यकता होती है जिसके सहारे व्यक्ति एक सुनिश्चित स्थान पर पहुँचने का प्रयास करता है। कई बार एकांगी विचारधारा से निर्णय शक्ति प्रभावित होती है और व्यक्ति को यह आभास हो जाता है कि जो कुछ उसके द्वारा सोचा अथवा समझा जा रहा है वह पूर्णतया सही है जबकि हकीकत में ऐसा नहीं होता है।

स्वयं समझने की शक्ति के द्वारा जो कुछ निर्धारित किया जाता है, वह एक निश्चित अवस्था तक उपयुक्त हो सकता है, लेकिन इसके पश्चात् उसमें अनिवार्य संशोधन की गुंजाईश होती है। विभिन्न परिस्थितियों के अन्तर्गत अपनी निर्धारण शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन व्यक्ति के माध्यम से अलग-अलग तरीके से किया जाता है। यदि व्यक्ति के द्वारा उत्पन्न विरोधाभासी स्थिति को छिपाते हुए किसी विचार तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है, तब वास्तविक मूल्यांकन के समय परिणाम कुछ और निकल जाते हैं। जब व्यक्ति के आन्तरिक विचार स्पष्ट नहीं होते हैं तब किसी लक्ष्य निर्धारण से जुड़े मसले पर कार्य करना कठिन हो जाता है और अन्ततः व्यक्ति उलझने की स्थिति में आकर खड़ा होने के लिए बाध्य हो जाता है।

यदि स्वयं की परिस्थितियों का विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि कहीं न कहीं चिन्तन के विविध पक्षों में पूर्वानुमान, पूर्वाग्रह, पक्षपातपूर्ण रवैया तथा मैंपन का बोध सम्मिलित था, जिसने वास्तविकता से कोसों दूर रखने में व्यक्ति को उकसाने का निरन्तर कार्य किया। किसी निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने हेतु

किया जानेवाला नियोजन पूर्ण रूप से विशुद्ध चिन्तन पर आधारित होना चाहिए, जिसमें कई बार उतार-चढाव की स्थिति से स्वयं को सुरक्षित रखने का निरन्तर प्रयास करना, व्यक्तिगत दायित्व के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

कर्तव्यनिष्ठ अवस्था के निर्माण में वैचारिक सक्षमता की विशेष भूमिका होती है क्योंकि जितना विचार पक्ष उद्देश्य की पूर्णता में मददगार होता जायेगा, उतना ही पुरुषार्थ तीव्र गतिशीलता के साथ वृद्धि को प्राप्त हो जाएगा। सामान्य दृष्टिकोण को जब व्यक्तिगत जीवन के साथ सम्बद्ध करते हुए विशिष्ट दृष्टिकोंण के स्वरुप में परिवर्तित कर दिया जाता है तब चिन्तन की विशुद्धता अनुभव के स्तर पर कार्य करने लगती है। जीवन की व्यापकता को स्वीकार करने के लिए जिस समग्र चिन्तन की आवश्यकता होती है उसमें गहराई तक उतरने के पश्चात् निष्कर्ष के रूप में प्राप्त विचार ही व्यक्ति को परिष्कार के मार्ग पर ले जाते हैं।

उर्ध्वगामी स्थिति का यथार्थबोध

व्यक्तिगत जीवन में लगभग सभी लोगों की आन्तरिक चाहत यह होती है कि किसी भी परिस्थिति के अन्तर्गत उनकी मन:स्थिति उर्ध्वगामी बनी रहे। विकास की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि गुणात्मक पक्षधरता के लिए ऊँचाई की ओर अग्रसर होना सबसे अहम शर्त होती है। यदि किसी कारण से विरोधाभासी परिस्थितियों के दबाव ने निराशा एवं अवसाद की स्थिति जीवन के परिवेश में निर्मित कर दी है उसके बावजूद भी व्यक्तिगत धारणा अधोगामी स्थिति को स्वीकार नहीं करती है। व्यावहारिक दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि व्यक्ति का मन अन्ततः स्वयं को समझाने में सफल हो जाने की ओर है जिसमें उसके द्वारा उर्ध्वगामी स्थिति के प्रति पूर्ण निष्ठा अभिव्यक्त की जाती है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिक अध्ययन उर्ध्वगामी स्थिति के बारे में खुलासा करते हुए बताते हैं कि व्यक्ति चाहे कितनी भी विषम स्थिति एवं नकारात्मक मनोभावों से गुजर रहा हो, उसके ज़ेहन में सदा ही विचारगत शुद्धि के लिये छटपटाहट बनी रहती है। कर्तव्यनिष्ठ अवस्था का विश्लेषण करते समय यह पता चल जाता है कि व्यक्ति के द्वारा सर्वप्रथम स्वयं को समझने के लिए प्रयास किए गए उसके पश्चात् कर्म की नि:स्वार्थ प्रवृति का अध्ययन करते हुए कर्तव्य हेतु समर्पण की स्थिति निर्मित हो सकी।

जीवन के विविध स्वरूपों में निजी स्तर पर की जाने वाली अनुभूतियाँ जब यह व्यक्त करती हैं कि प्रारम्भिक तौर पर किए जानेवाले व्यवहार में विचार की सात्त्विकता बनी रही लेकिन कार्य पूर्ण न होने की स्थिति के अन्तर्गत भाव एवं विचार में कुछ बदलाव आता गया और धीरे-धीरे नकारात्मक स्थिति तक पहुँचने में अधिक देर नहीं लगी। विचारगत परिवर्तन के सम्बन्ध में व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से यह तर्क-वितर्क किया जाता है कि जब समझदारी से कार्य नहीं हो सका तो थोड़ी चतुराई का इस्तेमाल कर भी दिया तो क्या फर्क पड़ता है और जमाने के हिसाब से चलना आवश्यक होता है, नहीं तो, बड़ी मुश्किल स्थिति हो जाएगी।

व्यक्तिगत जीवन के प्रसंग में यदि वैचारिक ऊहापोह की स्थिति विभिन्न कारणों से उत्पन्न भी हो गई तो अन्तर्मन बार-बार कचोटते हुए यह समझाने का प्रयास करता है कि जो कुछ हुआ वह न्यायसंगत नहीं था। जीवन में जिस सिद्धान्त के आधार पर चलते हुए आंशिक रूप से व्यवहार में रूपान्तरण किया गया था उसी सन्दर्भ को रेखांकित करते हुए अन्त:करण ने पुनः उर्ध्वगामी चिन्तन को ही अपना मूलभूत आधार बनाया। यदि व्यावहारिक धरातल पर विचार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के भावनात्मक एवं तार्किक पक्ष एक दूसरे की पूरकता में कार्य करते हैं और प्रत्येक स्थिति के दबाव एवं तनाव के पश्चात् स्वयं

को धीरे-धीरे सात्विक चिन्तन की दिशा में अभिमुखित कर लेते हैं।

एकाग्र प्रवृति की उच्च अवस्था

उपलब्धि के संबन्ध में जिन अनुभवों को समाज में स्थान प्राप्त हुआ उसमें सबसे प्रमुख बात व्यक्ति की एकाग्रता से जुड़ी हुयी थी; क्योंकि इसके विपरीत स्थिति में मानव स्वभाव की चंचलता उसके लक्ष्य की बाधा के रूप में स्वीकार की गयी। एक साधक का अपने साध्य के लिए समर्पित हो जाना और स्वयं की स्थिति को एकाकार भाव के रूप में स्वीकार कर लेना एकाग्र प्रवृति का प्रतीक होता है। यदि किसी कार्य विशेष के सम्बन्ध में कुछ सुनिश्चित किया जाना अनिवार्य है तब हमें स्वयं पर नियंत्रण रखने का अभ्यास करना चाहिए।

कई बार एकाग्रता के लिए बाह्य एवं आन्तरिक दबाव एक साथ उत्पन्न होते हैं और सामान्य जनमानस एक अन्तर्द्वन्द्व में उलझ जाता है जिसका कोई त्वरित समाधान वह नहीं निकाल पाता है। व्यक्तिगत जीवन में कार्य की पूर्णता हेतु सतर्कता से सभी कार्य संपन्न किए जाते हैं जिसके लिए बहुत अधिक गम्भीरता की स्थिति में स्वयं को परिवर्तित करने की कोशिश नहीं की जाती है। यदि व्यावहारिक जीवन में कर्तव्यनिष्ठ अवस्था की उत्पत्ति सुनिश्चित हो जाती है तो एकाग्र प्रवृति की आवश्यकता धीरे-धीरे बढ़ने लगती है। जीवन के सबल पक्ष के रूप में विकसित होनेवाली एकाग्रता को किसी भी विशिष्ट प्रयोजन के लिए उपयोग करने पर परिणाम सार्थक ही प्राप्त होते हैं।

कर्तव्यनिष्ठ अवस्था की ओर अग्रसर होने पर जैसे-जैसे आन्तरिक मनःस्थिति एकाग्रता में परिवर्तित होती जाती है लगभग उसी समय से बाह्य दृष्टि से मन उचटने लगता है। व्यक्तिगत विचार-विमर्श से लेकर सामूहिक गतिविधियों में भागीदारी करने की सामान्य स्थिति कुछ समय के पश्चात् कर्तव्यबोध से लक्ष्योन्मुखी प्रवृत्ति के रूप में उभरकर प्रत्यक्ष अनुभव का कारण बनने लगती है। विभिन्न विरोधाभासी परिस्थितियों के बावजूद व्यक्ति की स्मृति कर्तव्यपरायण मनोवृति की दिशा में अभिमुखित रहती है जिसके परिणाम साध्य तक पहुँचने में मददगार होते हैं।

मानवता के कल्याण को ध्येय बनाकर गतिशील होने का अर्थ है, जीवन की सम्पूर्ण अवस्था को सार्थकता के सन्दर्भ में स्वीकार करते हुए कर्मगत स्थितियों की ओर सहजता से समर्पित हो जाना।

जब साधक और साध्य के अन्तःसंबन्धों को अनुभूति के स्तर पर स्वीकार कर लिया जाता है, तब एकाकार भाव की परिणिति निर्मित हो जाती है, जो अन्ततः कर्तव्यनिष्ठा का प्रमाण होता है। साधक के द्वारा साध्य के लिए एकाग्रचित होकर किया जानेवाला पुरुषार्थ व्यापकता से ओतप्रोत होता है जिसके अन्तर्गत स्वयं की कर्तव्यनिष्ठ अवस्था हर पल जिम्मेदारी का अहसास कराती रहती है। जीवन की सर्जनात्मकता से जुड़ी विभिन्न क्रियाविधि व्यक्ति को अभिप्रेरित किया करती है जिससे एकाग्र मनोवृति के द्वारा व्यावहारिक जगत में अनगिनत आविष्कार किए जा सकते हैं तथा मानवता के उत्थान हेतु नवीन पद्धतियाँ विकसित करते हुए मूल्यपरक सिद्धान्तों का प्रतिपादन सुनिश्चित किया जा सकता है।

सार्थक परिणाम का व्यापक स्वरूप

जीवन की कर्मगत अवस्था को उज्ज्वल स्वरूप प्रदान करने में अन्तःकरण की सात्त्विकता का विशिष्ट योगदान होता है। मानव की अभिलाषाओं का गहन अध्ययन इस बात को पूर्णतया स्पष्ट कर देता है कि वह सर्वांगीण विकास के प्रवाह में सबकुछ पाना चाहता है। कई मनोवैज्ञानिक अनुसंधान व्यक्ति के भीतर छुपी इच्छाओं को बाह्य धरातल पर लाने का प्रयास करते हैं, जिसमें प्रकट एवं अन्तर्निहित स्थितियों का पता चल पाता है। जीवन की गतिशील प्रक्रिया में जिन सूक्ष्म मनोभावों के द्वारा व्यक्ति स्वयं की वास्तविक स्थिति

को ढँकने का प्रयास करता है, प्राय: उन्हें वह मर्यादा एवं लोकाचार के कारण निकटवर्ती लोगों के समक्ष भी मन:स्थिति को स्पष्ट नहीं कर पाता है।

दैनिक गतिविधियों की सामान्य स्थितियों में सामान्यत: वास्तविक भाव कभी-कभार निकलकर प्रत्यक्ष होते हैं, लेकिन उन्हें स्वयं व्यक्ति और उसका परिवार अनदेखा कर दिया करते हैं। जब साधारण अवस्था के अन्तर्गत कोई विचार अथवा व्यवहार अभिव्यक्त किया जाता है तब उसके प्रति उदासीन नजरिया अपनाने का प्रचलन सामाजिक अवधारणा में निहित होता है। सामान्यत: व्यक्ति के माध्यम से किन्हीं विशिष्ट स्थितियों में भावनाओं या विचारगत तथ्यों का समायोजन उस निश्चित वातावरण में प्रतिपादित करने की चेष्टा को बलपूर्वक अथवा कुछ समय के पश्चात् देख लेने के औपचारिक स्वरुप के मध्य स्थगित कर दिया जाता है। किसी सुनिश्चित उद्देश्य से सम्बद्ध पक्षों के सन्दर्भ में आंकलन एवं विश्लेषण की गुंजाईश को सहजता से छोड़ देने की प्रवृति सम्पूर्ण मानव जगत् की गतिशीलता का सबसे बड़ा अवरोध होता है।

स्वयं के प्रति अत्यधिक निश्चिन्तता पूर्ण-विश्वसनीय मन:स्थितियाँ कभी भी किसी स्थूल एवं सूक्ष्म बाधा को स्वीकार नहीं करती हैं, भले ही व्यापक अहित की संभावनाएँ क्यों न बढ़ जायें। कर्तव्यनिष्ठ अवस्था की ओर प्रस्थान का अभिप्राय केवल स्वयं के एकांगी सन्दर्भ तक नहीं है बल्कि समग्रता के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए एक-एक विचार के प्रति गम्भीरता से दायित्व निभाने की ओर अभिमुखित हो जाने से है। साधक के द्वारा किसी साध्य को लेकर कोई साधना, किसी सार्थक परिणाम के लिए सम्पादित की गयी हो तो यह व्यावहारिक स्थिति एक उच्चतम आदर्श का प्रतिपादन करने में समर्थ सिद्ध हो सकती है।

व्यक्तिगत इच्छा शक्ति को इस बात के लिए तैयार करना होगा जिसमें स्वयं के साथ सर्व को सम्मिलित करने की स्थिति, मुख्य रूप से अपना स्थान प्राप्त कर सके। चिन्तन की कड़ी में सही एवं उपयुक्त को महत्ता प्रदान करने की प्रवृति विकसित करनी पड़ेगी क्योंकि अच्छे विचार की स्वीकारोक्ति और उस पर निरंतर कार्य करने की आन्तरिक शक्ति प्रथम कर्तव्यनिष्ठता का जीवन्त प्रमाण होती है। श्रेष्ठ विचार कहाँ से प्राप्त हो रहें हैं और किन स्थितियों से उनका आगमन हुआ है तथा आखिरकार इन विचारों से किन-किन लोगों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सम्बन्ध है इसकी जाँच-पड़ताल करने से अधिक, विचार की प्राप्ति महत्त्वपूर्ण है जिसपर निष्पक्षता से कार्य किया जा सकता है।

कई बार मन-मस्तिष्क में विचार का उत्पन्न नहीं होना, व्यक्ति के लिए समस्या बन जाती है और कुछ स्थितियाँ तो ऐसी होती हैं, जिसमें विचार तो आ गया लेकिन उसे स्मृति में सुरक्षित नहीं रख पाने की परिस्थिति दुविधापूर्ण स्वरूप में परिवर्तित हो गयी। एक स्थिति, विचार के संबन्ध में ऐसी भी निर्मित हो जाती है जिसमें अच्छा विचार कई दिनों तक मन में स्थिर रहा लेकिन उसका विकास करते हुए उपयोग नहीं कर पाने की पीड़ा अन्तरात्मा को गहरा आघात पहुँचा देती है।

जीवन के उत्कर्ष का लक्ष्य लेकर चलना और श्रेष्ठ चिन्तन की व्यवस्था से चित्त को निर्मल करते हुए कर्म के व्यावहारिक स्वरूप तक पहुँच जाना सार्थकता की दिशा में अग्रसर होने का स्पष्ट लक्षण होता है।

अत: योग द्वारा कर्तव्यनिष्ठ अवस्था की ओर प्रस्थान करने से पूर्व सार्थक प्रयास एवं परिणाम के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित करने की पुरजोर कोशिश करनी चाहिए जिससे साधक एवं साध्य के मध्य एकाकार भाव की परिणिति का यथोचित रूप से सदुपयोग किया जा सके।

***

जीवन का प्रकाश पुंज 'योग'

श्रीमती प्रीति सिन्हा

मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर एवं बाल-मनोविज्ञान एवं निर्देशन में नालन्दा विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान। शिक्षिका व उपप्राचार्या के पद पर 21 वर्षों का कार्य अनुभव। बाल मनोविज्ञान निर्देशन में 'बाल समस्या निदान' हेतु कई वर्षों का विशिष्ट कार्य अनुभव। पता– द्वारा, संजय सिंह, आर. के. एम. लेन, नाला रोड़, लंगर टोली गली, अकबरपुर कोठी, पटना– 800004 (बिहार) .

वर्तमान में योग का विशेष प्रयोग शरीर पर किया जा रहा है, किन्तु अन्ततः वह मन को एकाग्र कर साध्य के साथ जोड़ने का साधन है। आधुनिक मनोविज्ञान ने मन की गहराइयों को बहुत हद तक पढ़ने का प्रयत्न किया है। क्लीनिकल साइकॉलॉजी ने प्रयोगों की भी झड़ी लगा दी है, पर प्रश्न है कि क्या आधुनिक मनोविज्ञान योग के द्वारा मन के निग्रह तथा संयोगीकरण की प्रक्रिया पर सही दिशा में उत्तर दे पा रहा है? आधुनिक मनोविज्ञान की विदुषी श्रीमती प्रीति सिन्हा ने इस परिप्रेक्ष्य में योग को देखने का प्रयत्न किया है।

यदि योग पर हम विचार करते हैं तो, पहाड़ों, जंगलों से शुरू होकर एक लंबा सफर तय करता हुआ, यह वर्तमान समय में प्रत्येक घरों का अभिन्न अंग बन चुका है। कभी इसका अस्तित्व ऋषि-मुनियों तक ही सीमित था किंतु आज आम व्यक्ति भी इससे रूबरू हो चुका है।

'योग' शब्द का विचार करते हीं हमारे मन में साधु, सन्तों या गेरुआ वस्त्र धारण किए सन्यासियों की छवियाँ कौंधने लगती हैं। प्रारम्भ में यह भ्रान्तियाँ थीं कि योग साधु, संन्यासियों से ही संबन्धित है, तो कुछ लोग इसे चमत्कार या काला जादू भी समझते थे। समय के साथ भ्रान्तियाँ बदली और योग को मानसिक और शारीरिक फिटनेस के लिए एक थेरेपी के रूप में स्वीकृत किया जाने लगा।

योग की गहनता

श्रीमद्भगवद्-गीता के अनुसार "योग: कर्मसु कौशलम्" अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्-गीता में योग को परिभाषित करते हुए कहा है कि "कर्मों को पूर्ण कुशलतापूर्वक किया जाए। वे आसक्ति रहित हों, प्रत्येक कर्म समत्व भाव से हो, तो समत्व भाव ही योग हैं।"

समत्व का अर्थ विभिन्न परिस्थितियों यथा सुख-दुख, लाभ-हानि में सम बने रहना या एक जैसा बने रहना। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही परिस्थितियों में

अपने मन की शांति और स्थिरता को बनाए रखना एवं लक्ष्य की ओर निरंतर बढ़ते रहना हीं समभाव अथवा समत्व कहलाता है।

योग को स्पष्ट करने के लिए यह कहा गया है कि– ”शरीर का मन से, मन का आत्मा से और आत्मा का परमात्मा से जुड़ना हीं योग कहलाता है। योग ‘अनुशासन का विज्ञान’ है। यह शरीर मन तथा आत्मशक्ति का सर्वांगीण विकास करता है। योग मन और शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करने का एक माध्यम है, जो हमें स्वस्थ जीवन की ओर ले जाता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्राचीन काल से ही योग हमारे जीवन शैली के एक महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में प्रचलित रहा है। योग भारतीय संस्कृति और परम्पराओं से विरासत में मिला एक अमूल्य निधि है और स्वस्थ जीवन के लिए एक अनमोल तोहफा भी है जो मनुष्य को तनाव रहित जीवन जीने की कला सिखाता है। प्रारम्भ से ही हमारे ऋषि-मुनि यौगिक जीवन का अनुसरण करते आ रहे हैं। अब योग मात्र आश्रम और साधु-सन्तों तक ही सीमित नहीं रह गया है, बल्कि पिछले कुछ दशकों में इसने हमारे दैनिक जीवन में अपना स्थान बना लिया है।

‘योग’ शब्द का अर्थ बहुत व्यापक और विस्तृत है। शास्त्रों के अनुसार इसके अनेक अर्थ मिलते हैं। योग शब्द का सामान्य अर्थ है– जोड़ना, जुड़ना, मिलना, युक्त होना आदि।

योग शब्द संस्कृत के युज् धातु से उत्पन्न हुआ, जिसका अर्थ है जोड़ना। योग से हम अपने को दूसरों से जोड़ पाते हैं। आत्मा को परमात्मा से जोड़ने के साधन का एक रूप है। योग शब्द युज् धातु के बाद ‘करण और भाव वाच्य’ में घञ् प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका अर्थ है– ‘स्वयं के साथ मिलन’।

यह सूक्ष्म विज्ञान पर आधारित एक अध्यात्मिक विषय भी है जो मन एवं शरीर के बीच सामंजस्य स्थापित करता है और भौतिक व आध्यात्मिक दोनों तरह के उत्थान को सम्भव बनाता है।

महर्षि पाणिनि के अनुसार योग की परिभाषा–

1) युजिर् योगे– अर्थात् संसार के साथ वियोग और ईश्वर के साथ सहयोग का नाम योग है।

2) युज् समाधौ– अर्थात् समाधि के लिए साधना से जुड़ना योग है।

3) युज् संयमने– अर्थात् मन पर संयम करना योग है।

महर्षि पतंजलि ने योग को “अनुशासन का विज्ञान” बताया है। उन्होंने अपने योग ग्रन्थ “पातंजल योग सूत्र” में वर्णन किया है कि

“मानव जीवन का परम लक्ष्य अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित होना है और यही योगविद्या का ध्येय भी है। योगविद्या हमें अपने स्वयं के अस्तित्व का बोध कराती है।”

महर्षि पतंजलि के अनुसार– “चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है “।

मन प्राय: अस्थिर रहता है। यह अस्थिरता हमारी चंचल वृत्तियों के कारण है। वृत्ति का अर्थ है चित को व्यवहार में लाना। जिस वस्तु के प्रति हम जैसा सोचते हैं या व्यवहार करते हैं उसे वृत्ति कहते हैं। सुखद दृश्यों को सोचकर या देखकर उन दृश्यों के प्रति प्रीति की भावना, लगाव की भावना स्वभाविक है। इसे ‘रागयुक्त वृत्ति’ कहते हैं। इसके विपरीत किसी दुखद घटना को याद करते हुए या ग्रस्त होते हुए उसके प्रति दुख की भावना का आना स्वाभाविक है और इसे ‘द्वेषयुक्त वृत्ति’ कहते हैं। हर समय हमारे मन में एक न एक वृत्ति का संचार होता रहता है। हमारी वृत्तियाँ हमारे पूर्व संस्कारों और वर्तमान में ग्रहण किए जाने वाले विषयों के कारण होती हैं।

विषय पाँच हैं– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। इन्हीं विषयों के अधीन काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और ईर्ष्या, द्वेष आ जाते हैं।

हमारी वृत्तियों के आधार पर जो-जो विषय स्वयं को ठीक लगते हैं, वही चित्त के द्वारा आत्मा के सम्मुख लाए जाते हैं। जब-जब हम अज्ञानवश अपने आप को चित्त मानते हुए उन्हें ग्रहण करते हैं, तब-तब मन में रागयुक्त या द्वेषयुक्त वृत्ति का संचार होता रहता है। इन वृत्तियों को चित्त की बाह्य-वृत्ति कहते हैं। अभ्यास द्वारा चित्त की वृत्तियों को बाहर की वस्तुओं या विषयों से हटाकर अंदर की ओर करते रहने से वृत्तियों का भटकना बंद हो जाता है। उन वृत्तियों को पूर्णत: शांत और एकाग्र कर लेने का नाम योग है। इसे हीं 'योग: चित्तवृत्ति निरोध ' कहते हैं।

योग से जुड़े ग्रन्थों के अनुसार योग करने से व्यक्ति की चेतना ब्रह्मांड की चेतना से जुड़ जाती है जो मन एवं शरीर, मानव एवं प्रकृति के बीच परिपूर्ण सामंजस्य को परिलक्षित करता है। योग का लक्ष्य आत्मानुभूति, सभी प्रकार के कष्टों से निजात पाना है, जिससे मोक्ष की अवस्था या कैवल्य की अवस्था प्राप्त होती है। जीवन के हर क्षेत्र में स्वतंत्रता के साथ जीवन-यापन करना, स्वास्थ्य एवं सामंजस्य योग करने के प्रमुख उद्देश्य हैं। योग का अभिप्राय एक आंतरिक विज्ञान से भी है, जिसमें कई तरह की विधियाँ शामिल होती हैं, जिनके माध्यम से मानव इस एकता को साकार कर सकता है और अपनी नियति को अपने वश में कर सकता।

योग का ऐतिहासिक सफर

योग विद्या में शिव को आदि योगी तथा आदि गुरु माना जाता है। योग की परम्परा अत्यंत प्राचीन है और इसकी उत्पत्ति हजारों वर्ष पहले हुई थी। माना जाता है कि जब से सभ्यता शुरू हुई है, तभी से योग किया जा रहा है। अर्थात प्राचीनतम धर्म या आस्थाओं के जन्म लेने से काफी पहले योग का जन्म हो चुका था।

वैदिक ग्रन्थों, उपनिषदों, महाभारत और श्रीमद्भागवत गीता में ज्ञान-योग, भक्ति-योग, कर्म-योग और राज-योग का अद्भुत उल्लेख मिलता है।

कई हजार वर्ष पहले हिमालय में कांति सरोवर झील के तटों पर आदि योगी महादेव ने अपने प्रबुद्ध ज्ञान को अपने प्रसिद्ध सप्तऋषि को प्रदान किया था। माना जाता है कि सप्तऋषियों ने योग के इस विज्ञान को एशिया, मध्य पूर्व-उत्तरी अफ्रीका एवं दक्षिण अमेरिका सहित विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में पहुँचाया। अगस्त नामक सप्तऋषि, जिन्होंने पूरे भारतीय उपमहाद्वीप का दौरा किया और जीवन के साथ योग संस्कृति को जोड़ा।

रामायण काल

योग की प्रक्रिया भगवान राम के काल में भी दिखी। राम ने जिस प्रकार से एक राजा, पुत्र, भाई और पति के रूप में अपने जीवन में संतुलन स्थापित किया और जीवन-काल में विपरीत परिस्थितियों को झेलते हुए अपना संतुलन बनाए रखा, साथ ही जीवन के सिद्धांतों और मूल्यों से समझौता किए बिना सदाचारी जीवन को उन्होंने जिया, उनके सभी कार्य दूसरों के लिए कर्तव्य और जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए थे। इस परोपकारी और निस्वार्थ जीवन के होते हुए भी वह हर पल सुखी और शांत थे, यह योग का हीं वास्तविक रूप है।

महाभारत काल

भागवत गीता को योग मनोविज्ञान या जीवन का विज्ञान भी कहा जाता है। भगवान कृष्ण धर्म-कर्म योग, भक्ति-योग और ज्ञान-योग की अवधारणाओं की व्याख्या करते हैं।

शास्त्रीय योग

150 ईसा पूर्व में महान् ऋषि पतंजलि द्वारा योग की बहुत व्यवस्थित प्रक्रिया लिखी गई थी। उन्होंने मन, बुद्धि, चेतना की गुणवत्ता को जागृत और विस्तारित करने के लिए व्यावहारिक तरीकों की प्रक्रिया और व्यवस्थित विश्लेषण की व्याख्या करने के लिए योग सूत्र लिखे। अष्टांग योग के उनके मार्ग में यम और नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि शामिल थे। योगसूत्र संक्षेप में, संस्कृत में 196 पंक्तियों में उल्लिखित हैं, जो 4 अध्यायों में विभाजित है।

उत्तर-शास्त्रीय योग

800 ईसवी में शंकराचार्य ने योग विज्ञान को अद्भुत अन्तर्दृष्टि दी। उन्होंने स्वामी, सन्यास या भिक्षुओं की परम्परा की स्थापना की, जिन्होंने उनके बाद समाज में बहुत ही सकारात्मक भूमिका निभाई। शंकराचार्य को एक क्रांतिकारी योग गुरु के रूप में भी माना जाता था। इन्होंने योग संस्कृति को जीवन्त किया, योग की विभिन्न परम्पराओं को एक किया, वैचारिक मतभेदों को दूर किया और योग विज्ञान को व्यापक रूप से विस्तृत किया। उन्होंने भगवद्गीता, उपनिषद, वेदांत दर्शन पर प्रकाश डाला।

हठयोग

हठयोग योग की सबसे लोकप्रिय परम्परा 600 से 1500 ईसवी के दौरान विकसित हुई थी, जिसकी स्थापना सन्त मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ ने की थी। योग का यह रूप अत्यधिक व्यावहारिक था, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभदायक था। हठयोग शरीर और मन को मजबूत करने और शुद्ध करने पर केंद्रित है। शरीर और मन का सामंजस्य सफाई, प्राणायाम, मुद्रा और बंधों के अभ्यास के द्वारा प्राप्त किया जाता है।

सिंधु सरस्वती घाटी की सभ्यता

योग का स्पष्ट प्रमाण सिंधु सरस्वती घाटी की सभ्यता से ही मिल जाता है जिसका इतिहास 2700 ईसा पूर्व से है। योग करते हुए पित्रों के साथ सिंधु सरस्वती घाटी सभ्यता के अनेक जीवाश्म,अवशेष एवं मुहरें पूरे भारत में योग की मौजूदगी का प्रमाण है।

देवी मां की मूर्तियों की मुहरें, लैंगिक प्रतीक तंत्र-योग का संकेत देते हैं। लोक परम्पराओं, सिंधु घाटी सभ्यता, वैदिक एवं उपनिषद् की विरासत, बौद्ध एवं जैन परम्पराओं, दर्शनों, महाभारत एवं रामायण नामक महाकाव्यों, शैवों वैष्णवों की आस्तिक परम्पराओं एवं तांत्रिक परम्पराओं में योग की मौजूदगी दर्शाती है।

वैदिक काल के दौरान सूर्य को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया। हो सकता है कि इस प्रभाव की वजह से आगे चलकर सूर्य नमस्कार की प्रथा का आविष्कार किया गया हो। प्राणायाम दैनिक संस्कार का हिस्सा था तथा यह समर्पण के लिए किया जाता था।

वैदिक काल

वैदिक काल (2700 ईसा पूर्व) में एवं इसके बाद पतंजलिकाल तक योग के अस्तित्व का ऐतिहासिक साक्ष्य देखे गए। मुख्य स्रोत, जिनसे हम इस अवधि के दौरान योग की प्रथाओं तथा संबन्धित साहित्य के बारे में सूचना प्राप्त करते हैं वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, पाणिनि महाकाव्य के उपदेशों, पुराणों आदि में उपलब्ध है।

माना जाता है कि सबसे पहले योग शब्द का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। इसके बाद अनेक उपनिषदों में इसका उल्लेख आया। कठोपनिषद में सबसे पहले योग शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ, जिस अर्थ में इसे आधुनिक समय में समझा जाता है। कठोपनिषद के बारे में कहा जाता है कि इसकी रचना ईसा पूर्व 5वी और 3री शताब्दी ईसा पूर्व के बीच के कालखंड में हुई थी।

पतंजलि का योग-सूत्र योग का सबसे पूर्ण ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल ईसा की प्रथम शताब्दी या उसके आसपास माना जाता है। हठयोग के ग्रन्थ 9वीं से लेकर 11वीं शताब्दी में रचे जाने लगे थे, इनका विकास तंत्र से हुआ था।

महावीर द्वारा पंच महाव्रतों एवं बुद्ध द्वारा अष्ठ मग्गा या आठ पथ की संकल्पना को योग साधना की शुरुआती प्रकृति के रूप में माना जा सकता है।

आधुनिक काल

19वीं सदी के अन्त में योग ने पश्चिम की यात्रा शुरू की। सबसे पहले स्वामी विवेकानंद ने 1897 में शिकागो में योग पर एक व्याख्यान में दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर दिया। वह भारत में कोलकाता के रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। स्वामी विवेकानंद एक सन्यासी थे और उन्होंने योग के विज्ञान की सच्ची तस्वीर पेश की और मानवता के लिए योग के महत्त्व के बारे में पश्चिम के बुद्धिजीवियों को आश्वस्त किया। भगवद गीता, कर्म योग, अष्टांग योग, भक्ति योग, ज्ञान योग पर उनके व्याख्यान हर योग अनुयायी के लिए वास्तविक प्रेरणा बन गए। उन्होंने एक संस्था 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की, जो योग की शुद्ध आध्यात्मिक परम्पराओं को जीवित रखने और समाज के उत्थान के लिए काम करती है।

महर्षि महेश योगी ने साठ के दशक में पश्चिमी देशों में जिस भावातीत ध्यान का विस्तार किया था उसका आधार मुख्यत: प्रत्याहार (सजगता) था। उसके साथ मन्त्र योग का समन्वय करके उसे शक्तिशाली बनाया गया था।

आमतौर पर माना जाता है कि चेतना की तीन अवस्थाएँ हैं– पहली जागृति की चेतना, इस दौरान मन और शरीर दोनों ही क्रियाशील रहते हैं। दूसरी स्वप्न की चेतना, इसमें मन और शरीर आंशिक रूप से क्रियाशील रहते हैं। तीसरी है सुषुप्ति की चेतना, इसमें मन और शरीर विश्राम की अवस्था में होते हैं। महर्षि महेश योगी कहते थे– "चेतना की चौथी अवस्था भी होती है और वह है भावातित चेतना।" वे अक्सर कहा करते थे– "स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अंदर है, भावातीत ध्यान के जरिए उसे हासिल करो।"

भारत सहित दुनिया के 126 देशों में इस ध्यान-साधना की मजबूत उपस्थिति बनी हुई है। अब तो वैज्ञानिक इसे क्वांटम मैकेनिक्स और थर्मोडायनोमिक्स से जोड़ कर देखने लगे हैं।

योग का विस्तार

ज्ञान-योग, भक्ति-योग, कर्म-योग, ध्यान-योग, पतंजलि-योग, कुंडलिनी-योग, हठ-योग, मन्त्र-योग, लय-योग, राज-योग, जैन-योग, बुद्ध-योग आदि योग की शैलियाँ हैं, जिनके स्वयं के सिद्धांत एवं पद्धतियाँ हैं जो योग के परम लक्ष्य एवं उद्देश्यों की ओर ले जाती हैं।

स्वास्थ्य एवं तंदुरुस्ती के लिए बड़े पैमाने पर की जाने वाली योग साधनाएँ इस प्रकार हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि बंध एवं मुद्राएँ, षट्कर्म, युक्त आहार, युक्त कर्म, मन्त्र जप, आदि।

800 ईसवी से 1700 के बीच की अवधि को उत्कृष्ट अवधि के रूप में माना जाता है। जिसमें महान आचार्यत्रयों जैसे आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और माधवाचार्य के उपदेश इस अवधि के दौरान प्रमुख रहे। इस अवधि के दौरान सुदर्शन, तुलसीदास, पुरंदरदास, मीराबाई के उपदेशों ने महान योगदान दिया। हठयोग परम्परा के मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, गौरंगीनाथ स्वात्माराम सूरी, घेरांडा, श्रीनिवास भट्ट जैसे कुछ महान हस्तियाँ हैं, जिन्होंने इस अवधि के दौरान हठयोग की परम्परा को लोकप्रिय बनाया।

1700 ईसवी से 1900 ईसवी के बीच की अवधि को आधुनिक काल के रूप में माना जाता है जिसमें महान योगाचार्यों रमन महर्षि, रामकृष्ण परमहंस, परमहंस योगानंद, विवेकानंद आदि ने राज-योग के विकास में योगदान दिया।

समकालीन युग में स्वामी विवेकानंद, श्री टी. कृष्णमाचार्य, स्वामी कुवालयनंद, श्री योगेंद्र, स्वामी राम, श्री अरविंद, महर्षि महेश योगी, आचार्य रजनीश, पट्टाभिजोइस, बी. के. एस. आयंगर, स्वामी सत्येंद्र सरस्वती जैसी महान् हस्तियों के उपदेशों से योग पूरी दुनिया में फैल गया है।

पश्चिमी जगत् में योग को हठ-योग के रूप में लिया जाता है, जिसमें शारीरिक फिटनेस, तनाव, शिथिलता तथा तनाव तकनीकों की प्रधानता है। यह मुख्यत: आसनों पर आधारित हैं जबकि परम्परागत योग का केंद्र बिंदु ध्यान है।

योग और मनोविज्ञान

मनोविज्ञान में मन के तीन स्तरों की परिकल्पना की गई है चेतन, अवचेतन और अचेतन। हमारा व्यक्तित्व और संपूर्ण व्यवहार इन्हीं स्तरों पर निर्भर करता है। चेतन स्तर पर हम बाहरी दुनिया की ओर उन्मुख होते हैं और अचेतन हमारे भीतर का मन है, इन दोनों के बीच की कड़ी अवचेतन है।

इस मन को समझने और नियंत्रित करने के शास्त्र को ही 'योग' कहते हैं।

योग का महत्त्व

शारीरिक महत्त्व– यह एक ऐसा साधन है जो बहुत सारी बीमारियों से दूर रख कर हमारे शरीर को स्वस्थ बनाता है। योग करने से शरीर की कार्यक्षमता और शक्ति बढ़ जाती है। श्वसन, पाचन रक्तसंचार, शारीरिक तापमान, हृदय गति जैसी क्रियाओं को सामान्य और नियंत्रित करने में मदद करता है। योग शरीर में उर्जा का संचार करता है जिससे जल्दी थकान महसूस नहीं होता है। यह शरीर में विभिन्न प्रकार के रस द्रव्यों को बनाता है तथा ग्रन्थियों को नियंत्रित करता है।

मानसिक महत्त्व– योग करने से व्यक्ति के शरीर के साथ-साथ मन भी स्वस्थ रहता है। यह मस्तिष्क में चेतन शक्ति का विकास कर मन की चंचलता पर नियंत्रण रखता है। यदि प्रतिदिन योग किया जाता है तो संयम, साधना और समाधि में उचित शक्ति मिलती है। योग मन के विकार और पूर्वाग्रह को दूर कर मन को शुद्ध करता है। जब मन स्वस्थ, स्थिर, शांत तथा एकाग्रचित्त होता है तो व्यक्ति का किसी भी कार्य को करने में मन लगता है। यह मानसिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। योगाभ्यास से धारणा, ग्रहण करने की क्षमता, स्मरण शक्ति आदि का विकास होता।

सामाजिक महत्त्व– वर्तमान समय में आधुनिकता और विलासिता के होड़ में हमारा समाज नैतिक मूल्यों और परम्पराओं को भूलता जा रहा है। भटकाव के इस स्थिति मे विकार, पूर्वाग्रह, ईर्ष्या द्वेष, अविश्वास, स्वार्थ आदि के घेरे में व्यक्ति दिन भर दिन फंसता जा रहा है। स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि समाज के सामने मूल्यों नैतिकता तथा परम्पराओं को बनाए रखने की समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं, जिनके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शत्रु बन गया है।

अति भौतिकवाद ने भारतीय समाज को भीतर से खोखला बना दिया है। परन्तु योगाभ्यास के द्वारा भौतिक सुखों को प्राप्त करने की अंधी दौड़ से बचा जा सकता है। योग के द्वारा स्वार्थ जैसी भावना को त्याग कर परोपकार तथा सहयोग की भावना का विकास किया जा सकता है।

योग के भेद

योग के कई प्रकार हैं। ये सभी प्रकार मन को स्थिर, विकार रहित, शांति और सामंजस्य स्थापित करने में मदद करते हैं।

राजयोग– यह चित्त में होनेवाली चंचलता कम करने का कार्य करता है, मानव में संयम लाता है तथा चेतना के उच्च स्तरों तक पहुँचने का आसान मार्ग प्रदान करता है।

कर्मयोग– इस योग में शरीर का उपयोग करते हुए सभी कार्य सरलता से करना सीखा जाता है। यह योग बिना फल की इच्छा के निस्वार्थ भाव से कर्म करने का मार्ग है। इसके द्वारा मानव अपनी दुर्बलताओं से छुटकारा पा लेता है और उसका मन स्थिरता को प्राप्त करता है।

भक्तियोग– यहाँ हम अपनी भावनाओं का उपयोग करते हैं। यह भक्ति का मार्ग है जिसमें स्वयं का परमात्मा के लिए समर्पण होता है। व्यक्ति अपने अस्तित्व को भुलाकर परमात्मा के अस्तित्व के साथ मिल जाता है।

ज्ञानयोग– यहाँ हम मन और बुद्धि का प्रयोग करते हैं योग का यह प्रकार अज्ञानता को समाप्त कर अध्यात्म की ओर उन्मुख करता है। जब व्यक्ति आध्यात्मिक विषय के सम्बन्ध में गलत धारणाएँ बनाकर अहंकार और द्वंद में फंस जाता है तब उसे ज्ञान योग से ही इस विकार से छुटकारा पाने में मदद मिलती है।

इसके अलावा योग के विभिन्न संप्रदायों, परम्पराओं, दर्शन, धर्मों एवं गुरु-शिष्य परम्पराओं के चलते योग के और भी प्रकार सामने आए जैसे हठयोग भेट योग, लययोग, पतंजलि योग आदि हैं।

योग का लक्ष्य

योग का प्रथम लक्ष्य है शारीरिक अंग प्रत्यंगों की वृद्धि तथा विकास का मार्ग प्रशस्त करना। मानसिक शक्तियों और ऊर्जा का विकास करना। मानसिक बीमारियों जैसे– भ्रम, तनाव अशांति, अनिद्रा आदि को दूर करने में सहायता करना। शरीर को स्वस्थ रखना और शारीरिक रोगों से मुक्ति दिलाना योग का प्रमुख लक्ष्य है।

संवेगात्मक रूप से मन को स्थिर करना और चित्त को शांत करने में सहायता प्रदान करना। व्यक्ति के आचरण, चरित्र और नैतिक उत्थान के राह को प्रशस्त करना। और इंद्रियों पर नियंत्रण करना।

योग पर कार्य

पूरी दुनिया में योग साधना से लाखों व्यक्तियों को लाभ हो रहा है, जिसे प्राचीन काल से लेकर आज तक योग के महान आचार्यों द्वारा विस्तृत किया गया। योग साधना का हर दिन विकास हो रहा है तथा यह अधिक जीवन्त होती जा रही है।

योग की धरती भारत में विभिन्न सामाजिक रीति-रिवाज एवं अनुष्ठान, पारिस्थितिकी संतुलन, दूसरों की चिन्तन पद्धति के लिए सहिष्णुता तथा सभी प्राणियों के लिए सहानुभूति योग साधना का ही प्रतिफल है।

वर्तमान समय में योग की शिक्षा अनेक विख्यात योग संस्थानों, योग विश्वविद्यालयों, योग कॉलेजों, विश्वविद्यालयों के योग विभागों, प्राकृतिक चिकित्सा कॉलेजों तथा निजी न्यासों एवं समितियों द्वारा प्रदान की जा रही है

अस्पतालों,औषधालयों चिकित्सा संस्थाओं तथा रोगहर स्थापनाओं में अनेक योग क्लीनिक, योग थेरेपी और योग प्रशिक्षण केंद्र योग की निवारक स्वास्थ्य देख -रेख यूनिटें, योग अनुसंधान केंद्र स्थापित किए गए हैं।

***

योग में गुरु-शिष्य परम्परा और जन सहभागिता

डा. राजेन्द्र राज
स्वतंत्र पत्रकार एवं पूर्व प्राचार्य, जनता कॉलेज, सूर्यगढ़ा पुरानी बाजार, सूर्यपुरा, पोस्ट और थाना–सूर्यगढ़ा, जि. लखीसराय (बिहार), ईमेल–rajendraraj8140@gmail.com

हालाँकि सभी शास्त्रों के सूक्ष्म ज्ञान के लिए गुरु की आवश्यकता होती है तथापि, योग, आयुर्वेद, संगीत आदि ऐसे शास्त्र हैं, जिनके लिए गुरु की परम्परा की आवश्यकता होती है। गुरु के विना किया गया योग घातक हो सकता है। तन्त्र-योग तो इतना छूट दे देता है कि यदि प्रत्यक्ष गुरु उपस्थित न हों तो कम से कम स्मरण तो अवश्य कर लेना चाहिए! इस प्रकार, योग में गुरु की परम्परा अपेक्षित होती है। अतः प्राचीन काल में अनेक ऐसे आश्रम होते थे, जहाँ विधिवत् योग सिखाए जाते थे। पूर्व के आलेख में हम योगशालाओं की चर्चा देख चुके हैं। यहाँ लेखक ने बिहार में स्थापित योग आश्रम, मुँगेर के सन्दर्भ में अपना मन्तव्य दिया है। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में प्राचीन मुद्गल ऋषि का यह आश्रम योग के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष में गुरु-शिष्य परम्परा को मजबूती प्रदान कर रहे है। योग के सन्दर्भ में यह आश्रम बिहार के लिए गौरव का स्थल है।

स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने 'रिखियापीठ सत्संग 'पुस्तक के भाग 4 में कहा है कि संसार के पति,पत्नी या पुत्र के समान गुरु भी एक सम्बन्ध हैं। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध आत्मा का आत्मा से है।जब शिष्य की आत्मा गुरु की आत्मा के साथ तन्मय हो जाती है, बन्धन में बंध जाती है,तब उसको कहते हैं गुरु शिष्य सम्बन्ध। गुरु-शिष्य की परम्परा तो वेदों की परम्परा है। योग की आध्यात्मिक विद्या मनुष्य के संस्कारों, चेतना और आचरण को बनाती है। इसी योग में सन्यास की भी परम्परा है। स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने इसी पुस्तक में माना है कि बच्चों में संस्कार डालने के लिए आश्रम आवश्यक है। यह संस्कार है व्यक्ति की अन्तरात्मा का प्रशिक्षण। आश्रम का एक ही लक्ष्य है– मनुष्य बनाना। हमें अपने कर्मों के दुष्प्रभावों से बचने प्रतिरोधक क्षमता का विकास करना चाहिए। हमारा जीवन कीचड़ में खिले हुए कमल के समान रहना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में पहले ही कह दिया – **"योगः कर्मसु कौशलम्"** अर्थात् योग से कर्मों में कुशलता आती है। योगसूत्रों में भी संकेत किया गया है **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।'** गीता के ही दूसरे अध्याय के 58 वें श्लोक में कहा गया है

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

चतुर्थ अध्याय के पहले श्लोक में वे कहते हैं कि मैंने इस योग का उपदेश सृष्टि के आरंभ में सूर्य देव को

दिया था, सूर्य ने अपने पुत्र मनु को यह योग सिखाया तथा मनु ने यह उपदेश अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु को दिया। इसके बाद राजऋषियों की एक लंबी परम्परा चली—

इमं विवस्ते योगं प्रोक्त्वानहमव्ययम्।
विवस्वान्मने प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥

जिस वृत्ति में हम फँसे हुए हैं, उस अवस्था और मनोवृत्ति से अपने आपको मुक्त करने का प्रयास ही निवृत्ति मार्ग है। वृत्ति का अर्थ चक्कर में फँसा रहना। उपसर्ग 'प्र' लगाने से 'प्रवृत्ति' तथा 'नि' लगाने से 'निवृत्ति' शब्द बना है। यह 'प्रवृत्ति' इस अर्थ में है कि मनुष्य अपने उद्देश्य को ही भूल जाए। इसीमें वह सुख-दुख, सन्तोष-असन्तोष का अनुभव करता है। वहीं निवृत्ति में हम अपने आपको मुक्त करते हैं। इसलिए सांसारिकता से लिप्त मनुष्य अपने आप को बन्धन से मुक्त कर के स्वतन्त्रता का अनुगामी बन जाता है। हमारी जो जीवनशैली होती है, उसमें मानसिकता, विचार, व्यवहार और कर्म सम्मिलित है। यह जीवनशैली एक प्रकार से भौतिक तथा सांसारिक है। निवृत्ति मार्ग में हम ईश्वराभिमुख होते हैं। एक झील में जल स्थिर और शान्त रहता है। तालाब में जल स्थिर नहीं होता। उसमें झील के जल के समान पारदर्शिता नही होती। यह जल ही तो हमारा मन है। राग, द्वेष, वासना, लोभ, महत्त्वाकांक्षा आदि लहरें हैं। जहाँ क्रोध, वासना और सकारात्मकता या रचनात्मकता नहीं है,वही तो वृत्तियाँ हैं, जो हमें संकीर्ण बनाता है। योग से जीवन में सन्तुलन और अनुशासन आता है। जीवन में साधना, संयम और अनुशासन से ही सत्व आता है। तामसिक और राजसिक गुणों को कम करना ही योग का प्रमुख लक्ष्य है। संयम का अर्थ वाणी, इन्द्रियों और मानसिक संयम से है। इसलिए कहा गया है— **'अथ योगानुशासनम्।'**

स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने अपने इसी 'रिखियापीठ सत्संग भाग 4' में योग के अर्थ को समझाया है—

"इड़ा और पिंगला का योग, पुरुष तथा प्रकृति का योग। जीवन में प्राण तथा मन दो शक्तियाँ हैं।प्राण पिंगला है, मन इड़ा है। इन्हीं के सायुज्य को योग कहते हैं। आसन-प्राणायाम संपूर्ण योग नहीं हैं, योग के मात्र एक विषय हैं, अंग हैं। जैसे शिक्षा जगत् में भूगोल गणित या राजनीति विभिन्न विषय हैं, उसी तरह योग के क्षेत्र में भी अलग विभाग और विषय हैं, जैसे हठयोग, राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, लययोग, क्रियायोग, इत्यादि। लेकिन योग की वास्तविक परिणति तब होती है, जब प्राणिक,मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ आपस में मिलती हैं।"

'योग' शब्द में धातु 'युज्' है, जिसका अर्थ एक को दूसरे से जोड़ना है। योगविद्या के आदि गुरु भगवान् शंकर हैं और उनके बाद वैदिक ऋषि-मुनियों और इनके पश्चात् भगवान् कृष्ण, महावीर और भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को यह ज्ञान दिया। इसप्रकार, योग में गुरु-शिष्य की परम्परा का महत्त्व है और यह हमारी प्राचीन पद्धति है। पतंजलि ने इसे सुव्यवस्थित किया। इसके आगे सिद्धपन्थ, शैवपन्थ, नाग, वैष्णव एवं शाश्वत पन्थ में गुरु-शिष्य परम्परा में योग विद्या विकसित होती रही। ऐतिहासिक रूप में सिन्धुघाटी की सभ्यता में मिले अवशेषों में शारीरिक मुद्राओं तथा आसनों से योग के अस्तित्व की स्वीकार्यता बढ़ती है। मध्ययुग में पतंजलि ने योग, आसन, शरीर और मन की सफाई, क्रियाएँ, प्राणायाम और हठयोग को स्थान दिया। वस्तुतः भारतीय अध्यात्म विज्ञान की शाखा योग में चमत्कारों और सिद्धियों से कभी आशय रहा। शाब्दिक अर्थ में यह जोड़ता है स्वयं को ईश्वर से और गुरु को शिष्य से। ईश्वर की अनुभूतियों से जोड़ता है, जहाँ ईश्वरीय अनुभूतियाँ हैं। यह दिव्य श्रवण, ध्यान आदि से। गुरु-शिष्य परम्परा में चमत्कार और नियम

का पालन, स्थिरता मन की भावना का नियन्त्रण, उड़ने की क्षमता, पूर्व जन्म के रहस्यों के ज्ञान, कपाल-विधि और ज्योतिष शक्ति की सर्वज्ञता भी यह रहा है। व्यास एवं भोजराज ने 'योगसूत्र' पर भाष्य लिखा तो 800 से 1700 ई. के अन्तराल में आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई आदि ने इसे विकसित किया। हठयोग को मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ आदि ने स्थान दिया। आत्माराम कृत हठयोगदीपिका में आदिनाथ से आरम्भ कर इसकी शिष्यपरम्परा का उल्लेख किया गया है। योग की इस गुरु-शिष्य परम्परा में अध्ययन-केन्द्र बने, योगशालाओं का विकास हुआ जहाँ भक्तियोग, कर्मयोग, ध्यानयोग आदि की शिक्षा दी गई। हर योगशालाओं के अपने सिद्धान्त और अभ्यास के तरीके अलग रहे। साधन या अभ्यास, यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, संयम, प्राणायाम के श्वास के नियन्त्रण, कुम्भन रेचन आदि विधियाँ बतायी गईं। कर्म, भक्ति और ज्ञान के अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर, मन की भावना के नियन्त्रण और ऊर्जा की प्राप्ति से है।

गुरु-शिष्य की परम्परा में आदि शंकराचार्य, अभिनवगुप्त से लेकर अब तक के महान योग गुरुओं ने ज्ञान तथा अध्यात्म के केन्द्रों या स्कूलों माध्यम से शिष्यों को विभिन्न कालों में शिक्षा प्रदान की है। उनके शिष्यों ने गुरुत्तर उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। व्यक्ति और मनुष्यता के हित में यह परम्परा चलती जा रही है।इस विरासत को हजारों वर्षों से गुरु-शिष्य की परम्परा चला रही है। यह कोई धर्म नहीं है, लेकिन किसी न किसी रूप में यह सभी धर्मों से जुड़ा हुआ है। भारत के सनातन धर्म और संस्कृति में यह 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना से जुड़ा हुआ है, जिसमें शारीरिक एवं मानसिक सुधारों, प्रतिरक्षण स्वास्थ्य आदि की भावनाओं से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि योग विद्या के केवल ॐ के जोर से नाद करने पर सोई हंडे चेतना जागने लगती है। नाभि पर चोट पड़ती है। यह नाभि ही तो जीवन-ऊर्जा का केन्द्र है। जो थोड़ा-सा भी योग जानता है, वह अनुशासित होता है। योग में श्वास पर नियंत्रण कर के आत्मा-परमात्मा की अनुभूति पाता है। श्वास हमारे प्राण हैं।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर के द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'गुरु शिष्य सम्बन्ध' में स्वामी सत्यानंद सरस्वती के मार्गदर्शन में रचित पुस्तक में स्वामी सत्यसंगानंद सरस्वती ने कहा है–

"शिष्यत्व ही योग का प्रारम्भ है। ज्यों ही आपके हृदय में योग मार्ग पर चलने की लालसा उत्पन्न हो, चाहे वह शारीरिक-मानसिक कल्याण के भाव से हो या आध्यात्मिक प्रबोधन के लिए, आप इस तथ्य को अवश्य स्वीकार करें कि आपको सर्वप्रथम शिष्य बनना पड़ेगा। तभी आप योग मार्ग पर आरूढ़ हो पाएँगे।"

आगे उन्होंने कहा है– *'शिष्य एक खुले पात्र के सदृश हैं, उसमें वर्षा की फुहारें गिरती हैं और धीरे-धीरे पात्र भर जाता है। तथापि एक उत्तम पात्र होने के लिए उसका स्वच्छ होना आवश्यक हैऔर उसमें कोई छिद्र हो तो उन्हें भी अवश्य बंद किया जाना चाहिए।'*

गुरु के सम्बन्ध में कहा है– *'आप चाहे जो हों, गुरु आपके जीवन की आवश्यकता है। गुरु शुद्ध देदीप्यमान अन्तरात्मा हैं, जो अज्ञानान्धकार का उन्मूलन करते हैं। एक बार गुरु से सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर काल इसे नहीं बदल सकता और न मृत्यु ही इसे मिटा सकती है।'*

स्वामी रामकृष्ण परमहंस, श्रीअरविंद, स्वामी विवेकानंद, रमण महर्षि, स्वामी कुवलयानंद, स्वामी शिवानंद, तिरूमलाई कृष्णाचार्य आदि ने योग के गुरु-शिष्य की परम्परा में अपनी संस्थाओं के माध्यम से योग को जन-जन तक पहुँचाने के कार्य वैज्ञानिकता और आधुनिकता के दृष्टिकोण के साथ करते रहे हैं।

वर्तमान में कुछ ऐसी भी संस्थाएँ हैं, जिन्होंने गुरु-

शिष्य की परम्परा को ताक पर रखकर मनमाने ढंग से योग को व्यापार के रूप में सिखा रहे हैं। ऐसे लोगों ने भारतीय परम्परा को हानि पहुँचाने का कार्य किया है।

इस सम्बन्ध में स्वामी शिवानंद सरस्वती ने योग के क्षेत्र में क्रान्तिकारी व युगान्तकारी कार्य किया। उनके शिष्य स्वामी सत्यानंद स्वामी ने उनकी ही प्रेरणा से मुंगेर में गंगा नदी के किनारे कर्णचैरा कहे जानेवाले स्थान पर मुंगेर योग स्कूल की एक आश्रम के रूप में 1963 ई. में महासमाधि के बाद स्थापना की। आज का मुंगेर योगनगरी कहलाता है। कल तक जो मुद्गल ऋषि का मुदगलपुरी मुंगेर सिगरेट की फैक्ट्री, बंदूक के कारखाने, मीरकासिम के किले, चंडिका स्थान के लिए जाना जा रहा था, उसमें एक स्वर्णिम अध्याय और जुड़ गया योग नगरी का। यह एक क्रान्तिकारी कार्य हुआ।

स्वामी सत्यानंद सरस्वती के नेतृत्व में 1973 ई. में प्रथम विश्व योग सम्मेलन का आयोजन किया गया। बीस वर्षों के बाद स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर द्वितीय विश्व योग सम्मेलन के बाद स्वामी निरंजनानंद सरस्वती की अगुवाई में 2013 में भी विश्व योग सम्मेलन किया गया। यहाँ योग के प्रशिक्षण के लिए कोर्स चलाए गए हैं और देश-विदेश के असंख्य शिष्यों ने गुरु के सानिध्य मे प्रशिक्षण ले कर जन-जन के बीच योग की शिक्षा दे रहे हैं। छोटे शहरों और गांवों में योग के केन्द्र बन गए हैं। योग मित्र मंडली के सदस्य आगे बढ़ाने में लगे हुए हैं। स्वामी रामदेव महाराज संचार तंत्र के विस्फोट के युग में में योग का प्रचार-प्रसार व्यापक रूप से कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने विश्व के लिए न केवल तृतीय विश्व-युद्ध को रोकने का कार्य किया है, बल्कि पीड़ित मानव-समुदाय के लिए विपत्तियों व संकट में निर्धन, अविकसित देशों की सहायता का कार्य किया है। सांस्कृतिक रूप से महत्त्वपूर्ण धरोहरों को संरक्षित करने का कार्य किया है।

हर वर्ष 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय विश्व योगदिवस मनाया जाता है। गत 2014 से यह विश्व योगदिवस मनाया जा रहा है विश्व के अधिकांश देशों में यह मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ का मानना है कि मानव स्वास्थ्य तथा कल्याण की दिशा में योग को अपनाना अनिवार्य है। शारीरिक और मानसिक व्याधियाँ एवं तनाव बढ़ते जा रहे हैं। कोरोना महामारी काल में इसके चमत्कार को अनुभव किया गया है। व्यक्तिगत चेतना के उन्नयन के साथ योग के दर्शन में उदारता, दूसरे की भलाई, करुणा, स्थिरता और स्थितप्रज्ञ होने आदि की भावनाएँ सम्मिलित हैं।

***

कीलों वाली शय्या पर हठयोग करते 19वीं शती के भारतीय योगी।

स्रोत:

THE MISSIONARY HERALD, vol. XXIX, 1833. No. XII, June 1833, p. 45

योग-साधना की तैयारी

श्री रवि संगम

बिहार पर्यटन-सूचना सामग्रियों के लेखक, भूतपूर्व पत्रकार, पटना। लेखक इन सभी स्थलों पर स्वयं घूमकर बौद्ध-सर्किट के पर्यटन स्थलों पर पुस्तक लिख चुके हैं।

वर्तमान समय में हम उपभोक्तावादी जीवन जी रहे हैं। सच्चाई यही है कि वर्तमान विकास की दिशा हमें जिस ओर ले जा रही है, उसमें हम उपभोक्ता मात्र बनते जा रहे हैं। इस उपभोक्तावाद की जो दिशा है, वह उस मरीचिका की तरह है, जहाँ पहुँचकर भी हम उसे आरम्भबिन्दु ही मान लेते है। हमें सुख पाने के लिए जो भौतिक साधन चाहिए। उसकी पूर्ति के लिए हमें पृथ्वी-जैसी सात-सात ग्रहों के संसाधन की आवश्यकता होगी, जो सम्भव नहीं है। अतः आज योग की सबसे अधिक आवश्यकता है, लेकिन वह सबसे कठिन भी होता जा रहा है; क्योंकि मन को भटकने के लिए विषय बढ़ते जा रहे हैं। आज योग में सबसे कठिन स्तर है –प्रत्याहार। उसके लिए हमें यम और नियम को अपनाना होगा। आरम्भ करने के लिए तैयारी करनी होगी। कैसी तैयारी होनी चाहिए—इसपर प्रस्तुत है एक आलेख।

योग के प्रति रुचि, योग का ज्ञान और योग की साधना—तीनों की भूमिका व प्रभाव पृथक् है; क्योंकि योग के प्रति रुचि हो और साधना न हो तो यह निरर्थक है। उसीप्रकार योग का ज्ञान हो और साधना न हो तो फिर उसका कोई अर्थ नहीं। इसके साथ योग साधना हो और उसका सही ज्ञान न हो तो– सब निरर्थक हो जाता है।

संपूर्ण मानव समाज इन्ही तीन वर्गों में बंटा है। लेकिन यहाँ एक कड़ी जो छूट गयी है– वह है योग की तैयारी कैसे हो? इसके लिए मन और शरीर को तैयार कैसे करे? क्योंकि योग की सही तैयारी न हो तो रुचि, ज्ञान व साधना जल्द ही अपना मार्ग भटक जाता है और क्रम बीच में ही टूट जाता है।

इसके अलावा आम धारणा है कि योग सबके लिए सम्भव नहीं। जो वर्ग जीवन की मूलभूत समस्याओं से उपर उठ चुका है, सिर्फ योग उसी के लिए सम्भव है। निम्न तबका जो सिर्फ रोटी की जुगाड़ और छत के लिए संघर्षरत है– उसे योग पर सोचने का अवकाश कहाँ! लेकिन यह भी मिथ्या धारणा है।

योग कोई भी कर सकता है, यदि उसका मन व शरीर उसके लिए तैयार हो– लेकिन उसके लिए सबसे पहले आवश्यक है योग की तैयारी कैसे और कहाँ से प्रारम्भ करे– यह जानना सबसे आवश्यक है। क्योकि उसके लिए मन और शरीर को तैयार करने में

"समाधि के स्वरूप और निहित सूक्ष्म मानसिक धारणा के वर्णन से ऐसी धारणा है कि योग सामान्य व्यक्ति के लिए नहीं है। यह धारणा तथापि स्वाभाविक परन्तु भ्रान्तिपूर्ण है। जिन्होंने योग के दर्शन का प्रतिपादन किया और उनकी विस्तृत प्रक्रिया तैयार की, वे मनुष्य की कमजोरियों और सामान्य मनुष्य के जीवन की सीमाओं और भ्रान्तियों से अनभिज्ञ नहीं थे। वे यह भी जानते थे कि वैज्ञानिक और मानव उन्नति एवं विकास के नियमों के अनुसार साधना की एक क्रमिक पद्धति अपनाकर, इन कठिनाईयों को दूर किया जा सकता है।"

ही लंबा समय लग जाता है, तभी योग की साधना लंबे समय तक जारी रखा जा सकता है।

जो वर्ग मूलभूत समस्याओं से उपर उठ चुका है— क्या वह चाहे तो योग साधक बन सकता है ??

तो जवाब है- नहीं; क्योंकि रुचि व ज्ञान होने से यह सम्भव नहीं है, जबतक उसकी तैयारी न हो। नहीं तो योग प्रारम्भ करने के बाद के कुछ समय के बाद ही इसका शीघ्र परिणाम नहीं दिखने पर इसे बीच में छोड़ दिया जाता है। यानि बिना मन व शरीर को तैयार किये बिना, साधना में हमें परिणाम कैसे मिलेगा ?

अतः इस मार्ग पर चलने के पहले इसके लिए तैयारी सबसे आवश्यक है— जो पातंजल योगसूत्र में स्पस्ट दिया गया है इसमें मानव जीवन के सभी प्रश्नों का जवाब है— जिसकी साधना के मार्ग में पग-पग पर जरूरत होती है।

यहाँ यह भी आवश्यक है कि सही मार्गदर्शन के बिना योग की तैयारी हो तो इसमें पूरा जीवन निकल जाएगा और मन व शरीर साधना के लिए तैयार नहीं हो पायेगा।

यहाँ उसी का उल्लेख सहज भाषा में करने का प्रयास किया गया है, ताकि आमजन मार्गदर्शन के बिना भी इसे समझ सके और तैयारी प्रारम्भ कर सके।

समाधि के स्वरूप और निहित सूक्ष्म मानसिक धारणा के वर्णन से ऐसी धारणा है कि योग सामान्य व्यक्ति के लिए नहीं है। यह धारणा तथापि स्वाभाविक परन्तु भ्रान्तिपूर्ण है। जिन्होंने योग के दर्शन का प्रतिपादन किया और उनकी विस्तृत प्रक्रिया तैयार की, वे मनुष्य की कमजोरियों और सामान्य मनुष्य के जीवन की सीमाओं और भ्रान्तियों से अनभिज्ञ नहीं थे। वे यह भी जानते थे कि वैज्ञानिक और मानव उन्नति एवं विकास के नियमों के अनुसार साधना की एक क्रमिक पद्धति अपनाकर, इन कठिनाईयों को दूर किया जा सकता है। किसी उचित सांसारिक विषय-वस्तु की प्राप्ति के लिए मनुष्य को विधिवत् प्रारम्भ करके लंबे समय तक प्रयास करने के लिए तैयार रहना पड़ता है।

यदि वह महान् गणितज्ञ बनना चाहता है तो वह अंकगणित की चार नियमों से प्रारम्भ करके धीरे-धीरे एक अवस्था से दूसरी तक बढ़ते हुए गणित-शास्त्र का पूर्ण ज्ञाता हो जाता है। वह किसी भी विश्वविद्यालय में अवकलन और समाकलन गणित के पाठ्यक्रम पर भाषणों में उपस्थिति से प्रारम्भ नही करता। वह सीखने के लंबे कार्यक्रम के लिए तैयार रहता है, लेकिन वह यह भी जानता है कि यदि वह प्रयास करना न छोड़े तो उसकी अन्ततः सफलता सुनिश्चित होती है।

परन्तु जब मानवीय प्रयत्न के उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रश्न आता है जो कि मानव विकास की

परिपूर्णता है तो लोग सामान्य समझ और अनुभव की इन सभी बातों को भूल जाते हैं। वे समाधि का अभ्यास करने में कठिनाई की चिन्ता करना प्रारम्भ कर देते हैं और जानने के इच्छुक होते हैं कि समाधि से होने वाले चेतन की उच्चतम स्थिति को वे कब प्राप्त कर सकेंगे। वे सोचते हैं कि उन्हें बस प्रारम्भ भरकर देना हैं और योगी-जीवन के सभी फल उन्हें शीघ्र मिल जाएँगे या मिल जाने चाहिए। इसलिए या तो वे अपना प्रयत्न प्रारम्भ ही नहीं करते या यदि वे करते भी हैं तो उनको निराश होती हैं और वे शीघ्र ही प्रयत्न छोड़ देते हैं।

वे सोचते हैं कि या तो यह बहुत चर्चित योग-विद्या में बहुत अधिक कुछ नहीं है या उनमें से इस कठिन कार्य को करने की क्षमता ही नहीं है। इसलिए हम इस दिशा में अपना भरसक प्रयास टालते रहते हैं और हम प्रत्येक जीवन में लगभग उसी स्थिति में बने रहते हैं। हम इस समस्या के प्रति उतना भी समान व्यावहारिक दृष्टिकोण नहीं अपनाते हैं जितना कि हम अपने सांसारिक कार्यों से संबन्धित इस प्रकार की समस्या के प्रति अपनाते हैं।

अन्य सभी विज्ञानों की भाँति, योग-विद्या में भी क्रमिक अभ्यास द्वारा पारंगत होना सम्भव है। हम ऐसे अभ्यासों से प्रारम्भ करें जो सभी कर सकते हैं। फिर धीरे-धीरे सरल से जटिल समस्याओं और सरल अभ्यासों से कठिन अभ्यासों की ओर बढ़ें। विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न क्षमताएँ छिपी होने के कारण हमारी प्रगति अभ्यास की अवधि से नहीं, बल्कि क्षमता में वृद्धि और हमारे मन और दृष्टिकोण में परिवर्तनों से नियंत्रित होती है। पहले हम कुछ ऐसे अभ्यासों और धारणा का विचार करें जो साधक को उच्च योग के कठिन अभ्यासों के लिए तैयार कर सकें।

पातंजलि के द्वितीय भाग में प्रारंभिक साधना की रूपरेखा संक्षेप में दी गई है। प्रत्येक साधक इससे प्रारम्भ कर सकता हैं। विधिवत् और निष्ठा से वह योगी -जीवन के लिए एक दृढ़ आधार निर्मित कर सकता है।

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। (2.1)

तप, स्वाध्याय और ईश्वर शरणगति– यह तीनों क्रिया-योग या प्रारंभिक योग हैं।

इस सूत्र में जो तीन अलग-अलग क्रियाएँ बताई गई हैं, उनका उद्देश्य मानव-स्वभाव के तीनों ही आधारभूत पक्षों, इच्छा, ज्ञान और प्रेम, को विकसित करना है।

समुचित सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि तैयार करके वैचारिक ज्ञान योगी-जीवन के लिए आधार निर्मित करता है। प्रेम या भक्ति के विकास से जीवन रूपान्तरित और निर्मल होता है। उससे ज्ञान प्रज्ञान हो जाता है और फिर मन की वृत्तियों पर नियंत्रण एवं निरोध करने में आत्मिक संकल्प-शक्ति के प्रयोग से योगी प्रज्ञान से आत्मानुभूति की स्थिति में पहुँच जाता है। सारे अभ्यास और आत्म-साधना की परिसमाप्ति आत्मानुभूति और मुक्ति में ही होती है।

पहली बात समझने की यह है कि योगी-जीवन का सच्चा प्रारम्भ इन तीनों क्रियाओं से ही होता है। यह स्वयं साधक पर निर्भर करता है कि 'प्रारम्भिक अवस्था से उन्नत अवस्था' में शीघ्रता से जाने के लिए वह इनका प्रयोग किस प्रकार करता है। यदि वह इन क्रियाओं से संबन्धित समस्याओं को उत्साह और लगन से हल करने में लग जाता है तो वह शीघ्र ही अपने निम्न स्वभाव पर नियंत्रण प्राप्त कर सकता है, लक्ष्य के प्रति निष्ठा से वह उच्च योग के कठिन अभ्यासों को प्रारम्भ करने की योग्यता प्राप्त कर सकता है।

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान रहस्यमय अभ्यास प्रतीत होते हैं, परन्तु उनके सम्बन्ध में रहस्यपूर्ण कुछ भी नहीं है। जीवन की गम्भीर समस्याओं का गहराई से अध्ययन ही स्वाध्याय है। इससे हमारी पर्याप्त सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि तैयार होती है।

इनसे योगाभ्यास में आने वाली सभी समस्याओं का तथा उन्हें हल करने की विधियों का हमें सही और पूरा ज्ञान हो जाता है। परन्तु यह अध्ययन हमें स्वयं इस प्रकार करना चाहिए कि हम अपने अन्तर से ही ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता धीरे-धीरे विकसित कर सकें और इसके लिए बाह्य सहायता पर हमारी निर्भरता समाप्त हो जाए।

यह अध्ययन भी गहराई से होना चाहिए। इसका उद्देश्य केवल किताबों आदि से पूर्व उपलब्ध सूचना का एकत्रीकरण मात्र न हो। स्वाध्याय का मुख्य उद्देश्य सच्चे ज्ञान के अपने अन्तर-पट खोलना और ऐसी क्षमता प्राप्त करना है कि आवश्यकतानुसार वह ज्ञान उपलब्ध हो सके। हम प्रायः यह भूल जाते हैं कि समष्टि -चेतना में जो ज्ञान है वह वास्तव में हमारे अपने अन्दर भी है। उस ज्ञान का कम-से-कम थोड़ा अंश तो निम्न और उच्च मन के बीच का मार्ग खुल जाने पर प्राप्त किया जा सकता है।

कारण-शरीर में कार्यरत जीवात्मा में विद्यमान है और जिसे निम्न मन को निर्मल बनाकर तथा उच्च 'स्व' से उसकी समस्वरता स्थापित करके प्राप्त किया जा सकता है। यह ज्ञान पुस्तकों, अवलोकन आदि से प्राप्त साधारण अप्रत्यक्ष ज्ञान से कहीं उत्तम होता है, क्योंकि यह उच्च स्रोत से प्राप्त होता है। यह ज्ञान उन सभी सामान्य गलतियों, अनिश्चितताओं और विकृतियों से मुक्त होता है, जो मूर्त मन द्वारा बाह्य साधनों से प्राप्त अप्रत्यक्ष ज्ञान की विशेषता होती है। इसलिए वे सभी साधन, विधियाँ या अभ्यास, जैसे मनन, ध्यान, जप आदि जिनके परिणामस्वरूप निम्न और उच्च मन के बीच का मार्ग खुल जाता है, स्वाध्याय के अन्तर्गत आते हैं। रुचि और क्षमता बढ़ने पर नये साधक को इनका अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए।

तप को प्रायः संयम के अर्थ में समझा जाता है। परन्तु इससे प्रारम्भिक योग के सच्चे और महत्त्वपूर्ण

"हम प्रायः यह भूल जाते हैं कि समष्टि-चेतना में जो ज्ञान है वह वास्तव में हमारे अपने अन्दर भी है। उस ज्ञान का कम-से-कम थोड़ा अंश तो निम्न और उच्च मन के बीच का मार्ग खुल जाने पर प्राप्त किया जा सकता है।"

स्वरूप की विशेषता के बारे में गलत धारणा उत्पन्न होती है। तपः संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है– उच्च तापमान तक गर्म करना।

यदि अशुद्ध सोने को खूब तपाया जाए तो धीरे-धीरे उसकी अशुद्धता जल कर समाप्त हो जाती है और केवल शुद्ध खोट-रहित धातु रह जाती है। तप में निहित मूल विचार यही है। मोटे तौर पर इसका अर्थ है बुराइयों और दोष रूपी समस्त खोटों को निकाल कर, अपने निम्न स्वभाव को निर्मल बनाने के उद्देश्य से उसे नियंत्रित करना। तभी हमारे शरीर और मन पवित्र होंगे और वे हमारे संकल्प के अनुसार तथा आत्मा के कुशल यंत्र के रूप में कार्य कर सकेंगे। अतः आत्म-संयम की प्रक्रिया द्वारा निम्न स्वभाव को उच्च में परिवर्तित करना ही तप है।

विभिन्न प्रकार के संयमों का उपयोग किया जा सकता है और यदि अति आवश्यक हो तो करना भी चाहिए, परन्तु वे इस प्रक्रिया के आवश्यक अंग नहीं हैं। कठोर व्रतों का पालन करने और शरीर को अनावश्यक कष्ट और पीड़ा देने की अपेक्षा, अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण और प्रभावी तरीकों से निर्मलीकरण और नियंत्रण किया जा सकता है। हर साधक को अपने व्यक्तिगत साधनों का उपयोग बुद्धिमत्तापूर्वक करना चाहिए।

ईश्वर प्रणिधान का सामान्य अर्थ है– ईश्वर की शरणागति। यह वास्तव में भक्ति का ही एक स्वरूप है और भक्ति उत्पन्न करने का एक सफल साधन है। वांछित फल प्राप्त करने के लिए हमें इस सारे ज्ञान का उपयोग गम्भीरता और अनवरत दृढ़ता से करना होता है। सफलता पाने के लिए अभ्यास, निष्ठा और दृढ़ता की आवश्यकता है। हमारे अंदर भक्ति भाव सहज ही उत्पन्न नही हो जाता। हमारी बहुत कड़ी परीक्षा ली जाती है और इससे हमे बार-बार निराशा उत्पन्न हो सकती हैं। लेकिन जब भक्ति उत्पन्न हो जाती है तो वह हमारे जीवन को ही बदल देता है। हम इतने अधिक उल्लसित और आनन्दित हो उठते हैं कि हमें लगता है कि हमने जो त्याग, प्रयास किये हैं या कष्ट उठाये हैं, वे हमें प्राप्त वरदान और ईश्वर कृपा की तुलना में कुछ भी नहीं है।

पाँच शब्दों के इस सूत्र का क्षेत्र व्यापक है। योगी जीवन के उच्च स्तरों के लिए तैयार करने की समग्र विधि इससे हमें ज्ञात हो जाती है। हमारे स्वभाव के लगभग प्रत्येक पक्ष इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। यदि तीन निष्ठा, सावधानी और उत्साह के साथ अभ्यास करें तो हमारे स्वभाव और शरीर की आत्मा के लिए उचित यंत्र ही नहीं बन जायेंगे, अपितु उपलब्धियों के नए क्षेत्र भी खुल जाएँगे। ऐसी छिपी शक्तियाँ और क्षमताएँ प्रकट होने लगेंगी, जिनका हमें कोई अनुमान ही नहीं होता।

जो कुछ हमने सीखा है कि यदि हम उसका अभ्यास करते हैं तो हमारा जीवन शीघ्र ही बदल जाएगा और हम यह आश्चर्य करना बंद कर देंगे कि क्या समाधि का अभ्यास करना सम्भव है, हम क्या प्रेम करने की ऐसी क्षमता प्राप्त कर सकते हैं कि हम अपने प्रेमास्पाद से थोड़ा बहुत ऐख्य प्राप्त कर सके ?

किसी भी प्रकार के सर्जनात्मक कार्य करने में प्रसन्नता होती है। प्रारम्भिक योग की क्रियाओं द्वारा अपने स्वभाव को परिवर्तित कर डालने का कार्य उच्चतम सर्जनात्मक कार्य है। एक चित्र या मूर्ति बनाने की अपेक्षा यह कार्य अधिक वास्तविक और क्रियात्मक है।

कलाकार का कार्य तो निर्जीव वस्तुओं से सम्बन्धित होता है। जो व्यक्ति अपने निम्न स्वरूप में से अपने सच्चे आत्म-तत्व को प्रकट करने के कार्य में लगा है, वह जीवित और वास्तविक वस्तुओं के सम्बन्ध में कार्यरत हैं। वह जीवन की समस्या सुलझा रहा है। जो भविष्य में होने को है उसीका जीवित चित्र बनाया जा रहा है।

हमारे निम्न स्वभाव के अनगढ़ संगमर्मरी पत्थर में से हमारे भविष्य की परिपूर्ण मूर्ति गढ़ी जा रही है। इस कार्य की दिव्य सर्जनात्मकता ही हमारे जीवन को संगीतमय बना देती है, भले ही बाह्य जगत् में हमें कठिनाइयों और परेशानियों का अनुभव क्यों न हो। यह तो कली की उस जीवित प्रक्रिया के समान है, जो इस स्वाभाविक प्रक्रिया में निहित समस्त सहज आनन्द के साथ पुष्प बनने के लिए प्रयत्नशील है।

हम भविष्य को वर्तमान में लाने का प्रयत्न करते हैं। हम वह होने का प्रयत्न करते हैं जो हम हैं। हम तो नहीं, परन्तु हमारा अन्तरतम आत्म-तत्त्व जानता है कि मूर्ति का स्वरूप क्या होगा। जैसे ही हम हाथ में छेनी लेकर अपने निम्न स्वरूप-रूपी संगमर्मर पत्थर को तराशना शुरू करते हैं, हमें उसके निर्देशन का आभास होता है। चित्र बनाने या कविता लिखने में क्या आनन्द है इसे कलाकार ही जानते हैं। वे ही अनुमान लगा सकते हैं कि हमारे अन्दर मूलतः छिपी जीवित दिव्य छवि की बाह्य अभिव्यक्ति से कितना आनन्द होगा।

चित्र तो एक निर्जीव वस्तु है, मूर्ति एक निर्जीव वस्तु है, परन्तु अन्तर से धीरे-धीरे अभिव्यक्त होने वाला यह जीवित-तत्त्व तो अनन्त क्षमताओं वाली दिव्य सत्ता है जो दिव्य प्रेम, ज्ञान और शक्ति के प्रवाह

का अधिकाधिक उपयुक्त माध्यम बन जाती है। पूर्ण छवि इस समय भले ही भावी अनदेखी और अनजान चीज हो, परन्तु उसकी बाह्य अभिव्यक्ति का कार्य क्रियात्मक है और वही योग की प्रारम्भिक क्रिया को आनन्द और उत्साह प्रदान करता है।

इस कार्य में आयु का, परिस्थितियों का और मृत्यु तक का तनिक भी महत्त्व नहीं है। यदि हम इस कार्य में लग गए हैं तो वह मृत्यु के पश्चात् भी अबाध गति से चल सकता है, क्योंकि हमारा उद्देश्य या लक्ष्य हमारे अन्दर है और जहाँ भी हम हों हमारे साथ रहेगा। समस्त बाह्य विषय-वस्तुएँ तो दृश्यमान जगत् से सम्बन्धित हैं, परन्तु अब हमने जीवन का तार अपने अन्तर में छिपे शाश्वत आत्मतत्त्व से जोड़ दिया है। वही तत्त्व हमें अपनी ओर लाने के लिए हमारा निर्देशन कर रहा है। यही प्रारम्भिक योग का सच्चा अर्थ है।

योग सूत्र का दूसरा भाग योग के उच्च अभ्यास की प्रारम्भिक तैयारी के स्वरूप पर तो प्रकाश डालता ही है, साथ ही यह दर्शन की रूपरेखा भी विधिवत् और तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत करता है जिस पर यह साधना आधारित है। ऐसी मान्यता है कि योग का यह दर्शन सांख्य दर्शन से लिया गया है और सांख्य दर्शन हिन्दू-दर्शन की छह पद्धतियों में से एक है। इसमें संदेह नहीं कि यह सांख्य दर्शन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, यद्यपि कुछ आधारभूत अन्तर भी हैं जिनको अनदेखा नहीं किया जा सकता। इन्हीं के कारण कुछ विद्वान् यह शंका करते हैं कि इन दोनों में कोई वास्तविक सम्बन्ध है भी या नहीं। ये दोनों दर्शन-पद्धतियाँ अतीत काल से हमें उपलब्ध रही हैं और हजारों वर्षों तक साथ-साथ प्रचलित रही हैं। उनके आदि स्रोत के कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण ऐसे प्रश्नों का निर्णय कर पाना अत्यन्त कठिन है, जिनमें केवल सैद्धान्तिक दार्शनिक की ही रुचि हो सकती है। साधक के लिए ऐसे प्रश्न अधिक महत्त्व के नहीं हैं।

उसका सम्बन्ध तो उस व्यावहारिक साधना से है जो समय की कसौटी पर और हजारों वर्षों के अनुभवों से सही सिद्ध हुई है और जिसे वह अपनी लक्ष्य-पूर्ति के लिए विश्वास के साथ अपना सकता है। योग का दर्शन इस साधना के लिए आवश्यक आधार प्रस्तुत करता है और बस यही बात महत्त्वपूर्ण है।

प्रयोगात्मक विज्ञान में सिद्धान्त की आवश्यकता और उसका महत्त्व विभिन्न विधियों में परस्पर सामंजस्य स्थापित करके उन्हें एक समग्र विधि का अंग बना देने के कारण होता है। परन्तु उस सिद्धान्त की सत्यता या प्रामाणिकता से उन विधियों की व्यावहारिक उपयोगिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

बहुत समय तक विद्युत्-सिद्धान्त और विद्युत-शक्ति का विभिन्न कार्यों के लिए अत्यन्त सफलता-पूर्वक प्रयोग होता रहा, यद्यपि उस शक्ति की कार्य-विधि को स्पष्ट करने वालो के लिए उस समय प्रचलित सिद्धान्त अत्यन्त ही अपूर्ण और असन्तोषजनक थे। यदि भविष्य के अनुसंधानों के कारण विद्युत्-सम्बन्धी सम्पूर्ण सिद्धान्त पूर्णतः अमान्य सिद्ध हों तो विद्युत् नियमों पर आधारित विज्ञान और वैज्ञानिक विकास और उद्योगों में उसका प्रयोग इन अनुसंधानों से बिल्कुल अप्रभावित रहेगा, क्योंकि ये नियम और प्रयोग प्रयोगात्मक तथ्यों पर आधारित हैं, न कि किसी प्रकार की कल्पना या सिद्धान्त पर।

यही बात योग के दर्शन पर भी लागू होती है। इसका दर्शन उत्कृष्ट और अत्यन्त तर्कसंगत है। जीवन के गहनतम रहस्यों को उद्घाटित करने में और अपने अन्तर में उस परमतत्त्व को खोजने के लिए इसके साधनों का प्रयोग एक विज्ञान के रूप में किया जा सकता है। इस दर्शन की मान्यता या अमान्यता से योग के रूप में इसके साधनों की उपयोगिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

योग-साधना पर आधारित जिस दर्शन का

पातञ्जलसूत्र में उल्लेख है– यह दर्शन दूसरे भाग में तीसरे से अट्ठाईसवें सूत्र तक 26 सूत्रों में क्रमशः दिया गया है।

यह दर्शन मानव के दुःखों, सीमाओं और भ्रान्तियों की समस्या से प्रारम्भ होता है। इस समस्या में कुछ अपवादों को छोड़कर सभी मनुष्य उलझे हैं। मानव-जीवन के इस स्पष्ट तथ्य को दूसरे भाग का 15 वाँ सूत्र संक्षेप में प्रस्तुत करता है। उसका अभिप्राय है– भोगों के परिणाम, उनके विनाश की चिन्ता और उनसे उत्पन्न संस्कारों के तथा मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों, विचारों और इच्छाओं में परस्पर विरोध के कारण सबके सब (कर्म फल) विवेकी पुरुष के लिए दुःख-स्वरूप हैं। संसार के सभी महान गुरुओं ने मानव-जीवन के इस आधारभूत तथ्य से ही प्रारम्भ किया। इसलिए हम इस सूत्र के कथन की सत्यता को स्वीकार कर सकते हैं।

फिर एक और प्रश्न उत्पन्न होता है। यह मान भी लें कि मानव-जीवन में सर्वत्र ही दुःख है तो क्या इस दुःख से बचना या मुक्त होना सम्भव है? इस प्रश्न का उत्तर बिल्कुल स्पष्ट, असंदिग्ध और सुनिश्चित है। जो दूसरे भाग के 16वें सूत्र में दिया गया है : "जो दुःख अभी प्राप्त नहीं हुआ है उससे बचा जा सकता है और बचना चाहिए।"

इसी प्रकार का उत्तर जीवन के सही दर्शन से मिलना भी चाहिए। उस दर्शन का क्या लाभ जो जीवन के दुःखों और सीमाओं का तो उल्लेख करे परन्तु उसका कोई सही उपाय न बताए या उन दुःखों से मुक्त होने की आशा ही न दिलाए। परन्तु फिर भी हमारे बहुत से आधुनिक दर्शन इसी प्रकार के हैं। वे प्रश्न उठाते हैं और उन्हें अनुत्तरित ही छोड़ देते हैं। उनके बताए उपाय केवल थोड़ा आराम देने वाले होते हैं या वास्तव में उपाय होते ही नहीं हैं।

जीवन के दुःखों से बचना या मुक्त होना सम्भव है, यह दर्शन दुःखों या क्लेशों के कारण का विश्लेषण करता है। यह उसकी परिपूर्णता और प्रभावशीलता का एक और प्रमाण है।

यदि हम किसी रोग या कष्ट से पोड़ित हैं तो उसका सामना करने की दो विधियाँ हैं। या तो हम आराम देने वाले ऐसे उपाय कर लें जो रोग से कष्टप्रद लक्षणों को अस्थायी या आंशिक रूप से दूर कर दें या अधिक प्रभावशाली व युक्तिसंगत विधि अपना कर रोग के कारण का पता लगाएँ और फिर उसका उपचार कराएँ। केवल इसी विधि से रोग को पूर्णतः और सदा के लिए जड़ से निकाल पाना सम्भव है।

योग का दर्शन यही दूसरा मार्ग अपनाता है। यह मानव दुःख और सीमाओं के मूल कारण को बताता है और ऐसा उपाय प्रस्तुत करता है जो कारण को ही समाप्त कर दे और इस प्रकार रोग को पूर्णतः और अन्ततः निकाल दे।

मानवीय दुःखों के कारण का विश्लेषण क्लेशों को सिद्धान्त में दिया गया है। इसमें कारणों और परिणामों की पाँच कड़ियों की एक श्रृंखला है। ये हैं–

अविद्या या मूल अज्ञान, अस्मिता अर्थात् मुक्त, परिपूर्ण और

दूसरी कड़ी है– स्वतंत्र शुद्ध-चेतना का उसकी दृश्य अभिव्यक्ति से तादात्म्य हो जाना।

तीसरी और चौथी कड़ियाँ हैं राग और द्वेष, जिनका अर्थ है विभिन्न प्रकार के आकर्षण और विकर्षण। चेतना का अपने कोषों और वातावरण से तादात्म्य हो जाने पर इनकी उत्पत्ति होती है।

पाँचवीं कड़ी इन कारणों और परिणामों का अन्तिम प्रभाव है। उसे अभिनिवेश कहते हैं। इसका अर्थ है, सांसारिक जीवन और इन्द्रिय सुखों में सहज आसक्ति और यह भय कि कहीं मृत्यु उन सबसे उसे वंचित न कर दे। अतः यह स्पष्ट है कि प्रथम कारण

अविद्या या अज्ञान है और अन्तिम परिणाम विभिन्न प्रकार की सीमाओं और भ्रान्तियों में मानव-जीवन बिताना है।

यहाँ पहले एक बात अवश्य स्पष्ट करना आवश्यक है। अविद्या साधारण प्रकार का अज्ञान नहीं है। यह सामान्य दार्शनिक अर्थ में समझा जाने वाला अज्ञान भी नहीं है। यह एक पारिभाषिक शब्द है जिसका वास्तविक अर्थ है— अपने सच्चे स्वरूप का बोध न होना। हम व्यक्त जगत् के चक्र में इसलिए पड़े हैं कि हमें अपने सच्चे दिव्य स्वरूप का बोध नहीं रहा। अतः आत्मा का व्यक्त जगत् के चक्कर में पड़ने का निमित्त कारण अविद्या ही है।

वह इस चक्र में क्यों और कैसे पड़ जाता है। ये वास्तव में जटिल प्रश्न हैं और समझ के क्षेत्र के परे हैं। सम्भवतः इन प्रश्नों का उत्तर हम तब पा सकें जब मुक्त होने पर अपने परमतत्त्व का हमें बोध हो जाए। इस समय तो हमें इस तथ्य को स्वीकार कर लेना चाहिए कि हम इस चक्र में पड़े हैं और यह हमारे लिए आवश्यक और वांछनीय है कि हम इन अवांछनीय परिस्थितियों और सीमाओं से निकल जाएँ।

यह स्पष्ट है कि यदि अपने सच्चे स्वरूप या परमतत्त्व का बोध न होना ही हमारे बन्धन का व्यक्त जगत् के चक्र में पड़ने का कारण हैं— तो इसका स्थायी उपाय केवल यही होगा कि हम परमतत्त्व या अपने सच्चे स्वरूप का बोध प्राप्त करें।

जिस तर्क पर योग का दर्शन आधारित है— उस शृंखला की यह अगली कड़ी है। यह बताती हैं कि मानव-जीवन में दुःख रूपी अन्तिम परिणाम का आदि कारण अपने स्वरूप के बोध का विस्मरण है। अतएव जीवन के दुःखों से मुक्त होने का एक मात्र उपाय उस परम तत्त्व का निश्चयात्मक और पूर्ण बोध प्राप्त कर लेना है।

इसको दूसरे भाग के 26 वें सूत्र में इस प्रकार व्यक्त किया गया है : "अविद्या को दूर करने का उपाय उस परमतत्त्व के बोध का निरन्तर अभ्यास करना है।" उसी को इस सूत्र में निश्चल और निर्दोष विवेक ज्ञान कहा गया है। यहाँ अस्थायी उपचार या क्षणिक उपाय नहीं बताये गये हैं, जैसा कि अधिकांश आधुनिक दर्शनों में होता है।

अगला स्वाभाविक प्रश्न यह है कि उस परम तत्व का बोध कैसे प्राप्त हो ? इसके उत्तर दूसरे भाग के 28 वें सूत्र में इस प्रकार दिया गया है—

"योग के अंगों का अनुष्ठान या अभ्यास करने से अशुद्धि का नाश होने पर आत्मिक ज्ञान का प्रकाश होता है जिससे परम-तत्त्व का बोध हो जाता है।"

इसके बाद 29 वें सूत्र में योग के सर्व-विदित आठ अंगों को बताया गया है। संक्षेप में यही योग दर्शन है। यह बताता है कि आपके निज संदर्भ के बोध का विस्मरण हो जाने के कारण आत्मा व्यक्ति जगत् के चक्र में पड़ जाता है। इसी के परिणामस्वरूप उसके कोषों से और उनसे संबन्धित तत्त्वों से तादात्म्य हो जाता है। इस तादात्म्य के कारण इस जगत् में व्यक्ति और विषय-कविताओं से उनके राग-द्वेष के बन्धन होते हैं। इन सीमित से प्राप्त विभिन्न प्रकार के अनुभव वास्तविक या सम्भावित दुखों के कारण होते हैं। फिर यह दर्शन उपाय बताता है। स्वाभाविक ही ये उपाय चक्र में बदलने की प्रक्रिया को उलट देते हैं। आत्मा को अपने समग्र स्वरूप के बोध की पुनःप्राप्ति पर ही इस प्रक्रिया की परिसमाप्ति होती है। योग विज्ञान और कुछ नहीं, बस वह विधि है जिससे यह सब कार्य विधिवत् और वैज्ञानिक प्रणाली से संपन्न किया जा सकता है।

***

रामचरितमानस की रामकथा

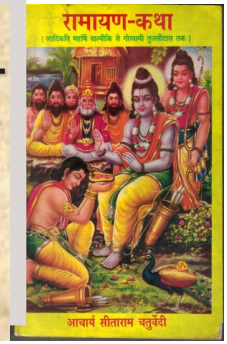

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं। इस अंक में रामचरितमानस से अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड एवं किष्किन्धाकाण्ड की कथावस्तु संकलित हैं।

अयोध्याकाण्ड

एक दिन दर्पण हाथ में लेकर दशरथ देखते क्या हैं कि कनपटी पर के कुछ बाल पक चले हैं। उन्होंने वशिष्ठ से परामर्श करके सुमन्त्र को आज्ञा दे दी कि राम के राज्याभिषेक की सारी सामग्री जुटा मँगाई जाय। दशरथ के कहने से वशिष्ठ जाकर राम और सीता को उपदेश भी दे आए।

नगर की सजावट का कारण जानकर कैकेयी की दासी मन्थरा ने कैकेयी को ऐसी उलटी-सीधी पट्टी जा पढ़ाई कि वह अपने गहने-कपड़े इधर-उधर फेंक-छितराकर आसन-पाटी लेकर कोप भवन में जा पसरी। सायंकाल दशरथ ने आकर उसे बहुत मनाया, बहुत समझाया पर वह तो ऐसे पक्के गुरु की चेली थी कि भला कहाँ मान कर देनेवाली थी। अन्त में जब दशरथ ने राम की ही सौगन्ध खा ली तब कैकेयी वर माँग बैठी कि राम के बदले भरत का राजतिलक हो जाय और तपस्वी का बाना बनाकर राम चौदह वर्षोंतक वन में जा रहें। यह सुनकर तो दशरथ सन्न रह गए। उन्होंने कैकेयी को बहुत समझाया बुझाया, उससे बहुत अनुनय-विनय किया, उसके बहुत हाथ-पैर जोड़े पर वह टस से मस न हुई। इसी उधेड़बुन में पूरी की पूरी रात ढल गई।

सबेरे सुमन्त्र के आने पर कैकेयी ने उनसे कहा कि राजा ने रातभर झपकी तक नहीं ली, जाकर राम को लिवाते लाइए। दशरथ के कहने पर सुमन्त्र झट जाकर राम को साथ लिवाते लाए। कैकेयी से सब कुछ सुनकर राम ने कहा– वाह! यह तो बड़े सौभाग्य की बात है। वन जाने में तो मेरा कल्याण ही कल्याण है और जब पिताजीके साथ-साथ आप माताजी की भी यही इच्छा हो तब तो फिर पूछना ही क्या है? भरत को राज्य मिले इससे बढ़कर अच्छी और क्या बात हो सकती है?

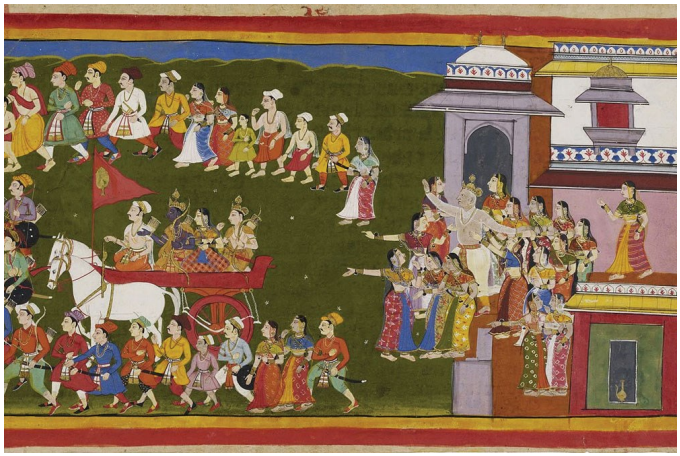

अयोध्या से नव के लिए प्रस्थान। दशरथ का विलाप

चित्र : साभार, ब्रिटिश लाइब्रेरी।

मूर्च्छा हटते ही दशरथ ने राम को छाती से खींच लगाया। राम ने उन्हें समझाया— 'बताइए, इतनी-सी बात के लिये आप क्या अपना जी छोटा किए डाल रहे हैं?'

मंगल समय सनेह-बस, सोच परिहरिय तात।
आयसु दीजिय हरखि हिय, कहि पुलके प्रभु गात॥

बस मैं माताजी से आज्ञा लेकर अभी आया जाता हूँ और आपको प्रणाम करके वनको चला जाता हूँ।

अब तो जिसने भी यह सुना, वही कैकेयी को जी भरकर, पानी पी पीकर कोसने लगा। सारा समाचार सुनकर कौशल्या ने अपना जी कड़ा करके रामको वन जानेकी आज्ञा दे ही दी। सीता भी आकर साथ चलने के लिए मचल उठीं। लक्ष्मण भी अपनी माता सुमित्रा से आज्ञा लेकर साथ चलने के लिये आ पहुँचे। राम, सीता और लक्ष्मण ने दशरथ से आज्ञा माँगकर रथपर बैठकर वन के लिये प्रस्थान कर दिया।

राम-लक्ष्मण सीता वन में चले गए

पहले दिन तमसा के तटपर रुककर अगले दिन अँधेरे मुँह उठकर वे शृङ्गवेरपुर में गंगा-तटपर जा पहुँचे जहाँ निषादराज गुह ने उनके लिये शिंशपा के पेड़ के नीचे सुन्दर साँथरी बना बिछाई और जल, फल, मूल लाकर उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। अगले दिन सबेरे राम-लक्ष्मण ने वट के दूध से अपनी जटा सँवारकर सुमन्त्र को सन्देश देकर अयोध्या लौटा भेजा।

गंगातट पर केवट के हठपर राम अपने पैर धुलाकर नाव से गंगा पार हो गए। राम, लक्ष्मण और सीता के साथ निषादराज भी वन की ओर बढ़ चले और प्रयाग में भरद्वाज मुनि के आश्रम पर जा पहुँचे। अगले दिन भरद्वाज के बताए हुए मार्ग से वे सबेरा होते ही वाल्मीकि के आश्रम में जा पहुँचे। उनके कहने से वे चित्रकूट पर मन्दाकिनी के तटपर पहुँच गए जहाँ कोल-किरातों ने उनके लिये बड़ी सुन्दर-सी कुटिएँ बना खड़ी कीं जिनमें वे बड़े सुख के साथ रहने लगे।

सुमन्त्र अयोध्या लौटे

राम को चित्रकूट पहुँचाकर लौटने पर निषादराज देखता क्या है कि सुमन्त्र रथ लिए वहीं मूर्ति बने खड़े हैं। निषादराज को अकेला आते देखकर सुमन्त्र व्याकुल हो उठे पर निषादराज ने किसी-किसी प्रकार उन्हें रथ पर चढ़ाकर अयोध्या के लिये बिदा कर ही दिया।

दशरथ ने प्राण छोड़े

अयोध्या में साँझ के झुटपुटे में दशरथ के भवन में पहुँचकर पूछने पर उन्होंने सारी कथा वहाँ कह सुनाई। सुनते ही दशरथ ने अधीर होकर तपस्वी श्रवण के पुत्र के वध की कथा सुनाकर कौशल्या से कहा कि अब राम के बिना जीते रहने को धिक्कार है। बस राम-राम रटते हुए उन्होंने देखते-

देखते अपने प्राण छोड़ दिए। राजभवन में कुहराम मच गया।

भरत राम को लिवाने चित्रकूट गए

वशिष्ठने दशरथ का शव तेल की डोंगी में उठवा धरवाया और भरत को बुलवा लाने को दूत भेज दिए। अयोध्या में आते ही भरतने अपनी माता से सारी कथा सुनकर कैकेयी को ऐसी-ऐसी सुनाई, ऐसा-ऐसा धिक्कारा कि कैकेयी की बोलती बन्द हो गई। इतने में बन-ठनकर आई हुई मन्थरा को देखते ही शत्रुघ्न ने उसे घसीट घसीट कर उसकी जमकर कुटम्मस कर डाली। वहाँ से कौशल्या के पास जाकर भरत ने शपथ लेकर बता दिया कि इस सारे काण्ड में मेरा कोई हाथ नहीं है। कौशल्या ने उन्हें गले से लगाकर बड़ी सान्त्वना दी। अगले दिन वशिष्ठ के कहने से भरत ने अपने पिता के सारे अन्तिम संस्कार कर डाले। सब कृत्य हो चुकने पर जब सबने भरत से गद्दी लेने को कहा तब उन्होंने किसी की एक न मानी और कहा कि मैं वन जाकर उन्हीं को मनाकर यहाँ ला बैठाऊँगा। अगले दिन सबेरे सब लोग चित्रकूट के लिये चल दिए। मार्ग में निषादराज और भरद्वाज से मिलते हुए वे चित्रकूट के पास जा पहुँचे।

उत्तर की ओर धूल उड़ती देखकर लक्ष्मण ने राम से कहा कि हो न हो भरत हम पर चढ़ाई करने चले आ रहे हैं। मैं अभी इनसे निपटे लेता हूँ। राम ने

चित्रकूट में भरत एवं राम का मिलाप

(1740-50 की पेंटिंग) साभार : राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली

उन्हें बहुत समझा-बुझाकर शान्त किया और कहा–

भरतहिं होइ न राजमद, बिधि हरि हर-पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी-सीकरनि, छीर-सिन्धु बिनसाइ॥

दण्ड-प्रणाम हो चुकनेपर भरत ने राजा दशरथ की मृत्युका समाचार उन्हें कह सुनाया। अब तो सभी लोग रो बिलख उठे। राम ने बड़े विधि-विधान से मन्दाकिनी पर जाकर अपने पिता का तर्पण किया।

राम की खड़ाऊँ लेकर भरत अयोध्या लौटे

भरत, वशिष्ठ आदि सबने राम से बड़ा आग्रह किया कि अयोध्या लौट चलिए पर राम किसी प्रकार भी नहीं माने और उन्होंने भरत से स्पष्ट कह दिया– 'हमारा तुम्हारा दोनों का धर्म है कि पिता की आज्ञा मानें।' तब भरत ने कहा– 'अब कहिए तो चित्रकूट के पवित्र स्थानों का दर्शन करता आऊँ।' अत्रि मुनि की आज्ञा से राज्याभिषेक के लिये लाया हुआ सब तीर्थों का जल भरत ने एक कूप में ले जा डाला जो अब भरत-कूप कहा जाने लगा है।

फिर राम की खड़ाऊँ अपने सिरपर उठाए लिए हुए वे सब के साथ अयोध्या लौट आए जहाँ वे जटा बाँधकर मुनियों के वेश में नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनाकर अयोध्याका राज्य संभालने लगे।

॥ अयोध्याकाण्ड पूर्ण॥

अरण्यकाण्ड

एक बार चित्रकूट पर इन्द्र के पुत्र जयन्त ने कौआ बनकर सीता के पैरों पर चोंच आ मारी (आनन्द-रामायण को छोड़कर अन्य रामायणों के अनुसार स्तन पर चोंच मारी थी)। राम ने उसपर सींक का ऐसा बाण उठा चलाया कि संसार में कहीं उसे टिकने तक को ठौर नहीं मिल पा सका। हार-झख मारकर जब वह राम के ही पैरों आ पड़ा तब कहीं एक आँख देकर उसे छुटकारा मिल पाया।

राम ने चित्रकूट छोड़ा

चित्रकूट पर लोगों के आने-जाने के डर से वे सीता और लक्ष्मण के साथ अत्रि मुनि के आश्रम में उठे चले गए जहाँ अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया ने सीता को बड़े अच्छे-अच्छे उपदेश दे डाले। वहाँ से चलकर मार्ग में विराध राक्षस को मारते हुए वे शरभंग ऋषि के आश्रम में पहुँच गए जो अपना सारा पुण्य राम को देकर योग की अग्नि से शरीर छोड़कर वैकुण्ठ चले गए। आगे चलने पर उन्हें हड्डियों का ऊँचा-सा ढेर दिखाई दे गया। पूछने पर मुनियों ने बताया कि जिन मुनियों को राक्षसों ने मार खाया है, ये उन्हीं की हड्डियाँ हैं। उसी समय राम ने—

निसिचर-हीन करौं मही, भुज उठाइ प्रन कीन।

आगे बढ़कर सुतीक्ष्ण मुनिके साथ वे अगस्त्य के आश्रम में चले जिनके कहने से वे गोदावरी के तटपर पंचवटी में कुटी बनाकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने जटायुके साथ हेल-मेल बढ़ा लिया और सुखसे रहने लगे।

शूर्पणखा की दुर्गति

एक दिन बहुत बन-ठनकर रावण की बहन शूर्पणखा ने वहाँ राम-लक्ष्मण से बड़ी बेतुकी बातें आ छेड़ीं। इसपर लक्ष्मण ने आव देखा न ताव, झट उसके नाक-कान काट उतारे। इससे बौखलाकर उसके साथ के खर, दूषण, त्रिशिरा आदि जितने भी राम पर चढ़कर आए सब राक्षस राम के हाथों बात की बात में खेत आए।

यह देखकर शूर्पणखा झल्लाई हुई रावणके पास लंका जा धमकी। उसकी दशा देख-सुनकर रावण ताड़ गया कि हो न हो भगवान् ही अवतार लेकर आ पहुँचे हैं, अब उन्हीं के हाथों मरकर भवसागर पार कर जाना चाहिए। ऐसा अवसर फिर कहाँ हाथ आनेवाला है ?

सीता हरण

इसी बीच राम ने सीता से कहा कि अब मैं कुछ नर -लीला करने की सोच रहा हूँ। तुम अग्नि में समाकर दूसरी बनावटी सीता बना खड़ी कर डालो। सुनने भर की देर थी। सीता झट अग्नि में जा समाईं और वैसी ही दूसरी सीता वहाँ आ खड़ी हुईं।

उसी समय रावण का भेजा हुआ उसका मामा मारीच सोने का हरिण बना हुआ राम के आश्रम के आस-पास आकर घास पर मुँह मारने लगा। उसे देखते ही सीता ने राम से कहा— 'जाइए, इसे मार लाइए, इसकी छाल बड़ी सुहावनी होगी।' ज्यों ही दूरतक उसके पीछे लगे चले जाकर राम ने उसे बाण मारा कि वह छटपटाकर राम के स्वर में 'हा लक्ष्मण' कहकर संसार से कूच कर गया। 'हा लक्ष्मण' सुनकर तो सीता के होश उड़ गए और वे घबरा उठीं। लक्ष्मण ने जब उन्हें समझाना चाहा तो वे उलटी लक्ष्मण पर बरस पड़ीं और ऐसी-ऐसी उलटी-सीधी बातें करने लगीं कि

लक्ष्मण कान मूँदकर अपने बाण से रेखा खींचकर वहाँ से चल दिए।

लक्ष्मण का जाना था कि रावण वहाँ आ पहुँचा और ज्यों ही सीता रेखा लाँघकर उसे भिक्षा देने चलीं कि वह उन्हें मन में प्रणाम करके अपने रथ में डालकर वेग से उड़ चला। जटायु ने उससे कुछ देरतक लोहा भी लिया और उसे लहूलुहान भी कर डाला पर उसकी तलवार के वार से पंख कट जानेपर वह धरतीपर अधमरा होकर आ गिरा। रावण ने सीता को लंका की अशोक वाटिका में ले जा पहुँचाया।

सूनी पर्णकुटी

लक्ष्मण को अकेला आते देखकर रामका माथा ठनका। लक्ष्मण की बात सुनकर वेगसे डग बढ़ाए जब वे पर्णकुटी पहुँचे तो देखा पर्णकुटी सूनी पड़ी है। आगे जटायु को अन्तिम साँस लेते देखकर जब वे उसके पास पहुँचे तब उसने सीता-हरण की सारी कथा उन्हें कह सुनाई और देखते-देखते दम तोड़ दिया। रामने जटायु से कहा कि सीता हरण की बात मेरे पिता दशरथ से स्वर्ग में मत जा बताना। यदि मैं राम हूँ तो स्वयं रावण ही कुल सहित वहाँ उन्हें जा सुनावेगा–

सीता-हरनहि तात! जनि, कहेहु पितासन जाइ।
जो मैं राम त कुलसहित कहिहि दसानन आइ॥

जटायु का अन्तिम संस्कार करके वे आगे कबन्ध राक्षस को मारकर शबरी के आश्रम में जा पहुँचे। उसने राम की बड़ी आवभगत की और बताया कि आप पम्पा (वर्तमान हम्पी) सरोवर पर चले जाइए और सुग्रीव से मित्रता जा कीजिए। वह आपकी पूरी सहायता कर डालेगा। राम ने तब शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दिया और शबरी योग की अग्नि से शरीर छोड़कर मुक्त हो गई।

[यह प्रसंग मंजुल रामायण और सौपद्म रामायण से लिया गया है।]

राम चलते-चलते पंपा सरोवरपर जा पहुँचे।

॥ अरण्यकाण्ड पूर्ण॥

किष्किन्धाकाण्ड

पम्पा सरोवर से आगे बढ़कर राम-लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत की तलहटी में जा पहुँचे। सुग्रीव के भेजे हुए हनुमान् ने उनका सारा वृत्तान्त जानकर उन्हें सुग्रीव के पास ले जा पहुँचाया और अग्नि के सामने राम सुग्रीव की मित्रता पक्की करा दी। सुग्रीव ने सीता के हाथ से फेंक गिराए हुए वस्त्र और आभूषण राम को निकाल दिखाए जिन्हें देखते ही राम बहुत व्याकुल हो उठे। सुग्रीव ने उन्हें ढाढ़स बँधाकर अपनी कथा भी कह सुनाई कि बाली ने मुझे कैसे निकाल बाहर किया और मेरी पत्नी भी छीन ली।

सुग्रीव के मुँहसे वाली के अपार बल की बात सुनकर राम ने दुन्दुभि दैत्य की ठठरी अपने पैर के अँगूठे से दूर उछाल फेंकी और एक बाण से तिरछे बाँके खड़े सात ताड़ के वृक्षों को भी बींध गिराया। तब उन्होंने सुग्रीव को बाली से भिड़ने को उकसा भेजा। पर बाली की मार खाकर जब वह रुआँसा होकर लौट आया तब राम ने उसके गलेमें एक माला उठवा डलवाई और उसे फिर भेजते हुए समझा भी दिया कि तुम दोनों का रूप-रंग एक-सा देखकर ही मैं बाण नहीं चला पाया था।

बाली का वध

जब अगली बार उसने बाली को जा ललकारा तब तारा ने बाली को समझाया भी कि मत जाओ, पर बाली भला किसकी माननेवाला था! ज्योंही वह आकर सुग्रीव से भिड़ा कि राम ने एक बाण मारकर उसे वहीं ढेर कर डाला। बाली ने जब राम से कहा कि आपने छिपकर बिना कारण मुझे क्यों मारा?

मैं बैरी सुग्रीव पियारा?

कारन कवन नाथ मोहि मारा?

तब राम ने कहा—

अनुज-बधू ,भगिनी ,सुत ,नारी ,
कन्या ;सुनु सठ! ये सम चारी॥

[अधिकांश प्रतियोंमें दूसरी अर्द्धाली है— सुनु सठ ये कन्या सम चारी। किन्तु नियमतः 'कन्या' शब्द भी अनुज-बधू, भगिनी, सुत-नारी के साथ ही आना चाहिए।]

बाली ने अंगद को राम के हाथ सौंपकर राम के सामने अन्तिम साँस छोड़कर मुक्ति पा ली। सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य मिल गया। वर्षा के कारण राम चार महीने प्रवर्षण पर्वतपर जा रहे। जब वर्षा बीतनेपर भी सुग्रीव ने कोई खोज-खबर न ली तब राम के कहने से लक्ष्मण ने जाकर उसे बहुत फटकाराऔर धमकाया और उसे अपने साथ राम के पास लिवा ले जा पहुँचाया। सुग्रीव ने सीता की खोज के लिये चारों ओर अनेक वानर भेज पठाए। जब अंगद, नील, हनुमान्, जाम्बवन्त को सुग्रीव दक्षिण की ओर भेजने लगे तब राम ने हनुमान् को अपनी अँगूठी निकाल थमाई और कहा कि यह सीता को ले जा दिखाना और जयन्त की करतूत के साथ मेरी विरह-दशा भी कह सुनाना।

हनुमान् समुद्र लाँघ गए

दक्षिण की ओर सीता को खोज में घूमते हुए ये लोग एक गुफा में जा घुसे। वहा बैठी हुई तपस्विनी (स्वयंप्रभा) ने उन्हें भरपेट खिलाया पिलाया और कहा कि आँखें मूँद लो तो गुफा से बाहर पहुँच जाओगे। ज्योंही उन्होंने आँखें मूँदी त्यों ही बाहर निकलकर वे देखते क्या हैं कि सामने अपार समुद्र लहरा रहा है। जब सब उसे लाँघ पाने में हार मान बैठे तब सबने सोचा यहीं खाना-पीना छोड़कर प्राण दे डाले जायें; क्योंकि बिना खोज किए लौट जानेपर तो सुग्रीव भी बिना मारे छोड़नेवाला नहीं है। वे आसन बिछाकर बैठे ही थे कि पहाड़ की गुफा से सम्पाति गिद्ध झाँककर बोला— 'वाह! यह तो अच्छा बैठे-बिठाए भोजन आ मिला है।' उसे देखकर तो सब वानर सिट-पिटा गए और कहने लगे कि हमसे अच्छा तो जटायु ही था जिसने राम के काम में अपने प्राण दे डाले। जटायु के नाम की भनक पड़ते ही सम्पाति के कान खड़े हुए। पूछने पर वानरों ने अबतक की सारी कथा उसे कह सुनाई। जटायु को जलांजलि देकर उसने बताया— 'वह देखो! चित्रकूटपर बसी लंका के अशोक उपवन में सीता बैठी हुई हैं। जो इस समुद्र को लाँघ जाय वही उनसे मिल पा सकता है।'

जब सब अपना-अपना बल बखान बखानकर हार मान बैठे तव जाम्बवन्त ने हनुमान् से कहा— 'का चुप साधि रहा बलवाना?' उन्हें तो स्मरण दिलाने भर की देर थी। झट बढ़ते-बढ़ते वे आकाश से जा लगे और बोले कि कहो तो रावण को पीसकर पूरा त्रिकूट ही उखाड़कर उठाए लिए चला आऊँ। पर जाम्बवन्त ने कहा— 'नहीं-नहीं, यह सब मत कर बैठना। तुम बस सीताजी को देखकर उनका केवल समाचार-भर यहाँ लोट आ बताना।'

॥ किष्किन्धाकाण्ड पूर्ण॥

क्रमशः

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार

(मई, 2023ई.)

महावीर मन्दिर की दैनिक आय 10 लाख पहुँची

वर्तमान महावीर स्थान न्यास समिति के पास महावीर मन्दिर का प्रबन्धन मिलने के पूर्व इसकी अधिकतम आय पूरे साल में ग्यारह हजार दिखलायी जाती थी। अब इस मन्दिर की आय प्रतिदिन की दस लाख रुपये है। इस आय में मन्दिर के भेंटपात्रों से निकली चढ़ावे की राशि, कर्मकाण्ड शुल्क, नैवेद्यम् की बचत राशि, स्वैच्छिक चन्दे से प्राप्त राशि, विक्रय केन्द्रों की बचत राशि और बैंक ब्याज सम्मिलित है। विशेषज्ञ इसे असाधारण उपलब्धि बताते हैं। इसमें अस्पतालों एवं अन्य संस्थाओं की आय-व्यय राशि का समावेश नहीं है। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने शुक्रवार को महावीर मन्दिर में आयोजित संवाददाता सम्मेलन में इसकी जानकारी दी। उन्होंने बताया कि वित्तीय अनुशासन, पारदर्शिता और बेहतर प्रबन्धन से मन्दिर की आय में उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी हुई है। कोरोना काल के बाद महावीर मन्दिर में भक्तों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। महावीर मन्दिर द्वारा संचालित अस्पतालों में रियायती दरों पर समुचित इलाज, गरीबों की मदद, भर्ती मरीजों को निःशुल्क भोजन जैसे परोपकारी कार्यों से लोगों की आस्था मन्दिर के प्रति लगातार बढ़ती जा रही है। महावीर मन्दिर ने अयोध्या में रामलला के भव्य मन्दिर निर्माण में 10 करोड़ का सहयोग का संकल्प लिया है। उसमें से 6 करोड़ रुपये दिए जा चुके हैं। दो-दो करोड़ के दो किश्त मन्दिर निर्माण पूरा होने तक दिए जाएँगे।

मनोकामना पूरन स्थान के रूप में ख्याति

मनोकामना पूरन धर्म स्थान के रूप में महावीर मन्दिर की ख्याति देश भर में फैल रही है। देश के तत्कालीन राष्ट्रपति रामनाथ कोविन्द महावीर मन्दिर को मनोकामना पूरन मन्दिर के रूप में बता चुके हैं। लोगों की आस्था हनुमानजी के प्रति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

मन्दिर के पास सवा सौ एकड़ से अधिक जमीन

जब वर्तमान न्यास समिति ने 1987 में कार्य प्रारम्भ किया था, तब महावीर मन्दिर के नाम से मन्दिर के अलावा कोई जमीन नहीं थी। इस मन्दिर परिसर के विस्तार के साथ आज इस मन्दिर के पास सवा सौ एकड़ से अधिक का भूखण्ड है। केसरिया के पास विराट् रामायण मन्दिर के लिए इसने सात लाख रुपये प्रति एकड़ से बारह लाख रुपये प्रति एकड़ की दर से सौ एकड़ जमीन खरीदी है, जबकि सरकारी रेट अस्सी लाख रुपये प्रति एकड़ है। राम जानकी पथ में पड़ने वाले भूखण्ड का मुआवजा चौगुने दाम पर मिलने वाला है।

पटना के बाहर भी पाँच शहरों में मन्दिर की स्थापना

वर्तमान न्यास समिति ने महावीर मन्दिर, पटना के सर्वांगीण विकास के अलावे हाजीपुर के प्रसिद्ध पौराणिक गजेन्द्र

मोक्ष स्थल, कोनहरा घाट पर एक भव्य विशालनाथ मन्दिर और वैशाली जिला के इस्माइलपुर में नवीन आकर्षक राम जानकी मन्दिर का निर्माण किया है। महावीर मन्दिर के प्रति अतिशय श्रद्धा भाव के कारण मुजफ्फरपुर के स्व दिलीप साहु ने वहाँ का विशाल रामजानकी मन्दिर, मनमोहन मन्दिर और हनुमान मन्दिर को वर्तमान महावीर मन्दिर के नाम कर दिया। उन मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया गया है। इसी तरह गया के शैलेश कुमार सिन्हा ने वहाँ कचहरी के पास स्थित माधवानन्द मन्दिर महावीर मन्दिर को सौंप दिया है। कोइलवर के पास सकड़डीह के श्री रंजी सिंह ने एक हनुमान मन्दिर सौंपा है जिसके पास मेन सिक्स लेन मार्ग पर एक बीघा जमीन है। वहाँ भव्य शिव मन्दिर बन रहा है।

2025 के सावन तक विश्व के सबसे बड़े शिवलिंग की स्थापना, इसी 20 जून से विराट रामायण मन्दिर का निर्माण प्रारम्भ

पूर्वी चंपारण जिले के केसरिया-चकिया पथ पर कैथवलिया-बहुआरा में विराट रामायण मन्दिर का निर्माण 20 जून से प्रारम्भ हो जाएगा। वर्ष 2025 के सावन तक मन्दिर में विश्व के सबसे बड़े शिवलिंग की स्थापना हो जाएगी। उसी साल आखिर तक विराट रामायण मन्दिर बनकर तैयार हो जाएगा। मन्दिर के कुल 12 शिखरों की साज-सज्जा में और दो वर्ष लगेंगे। महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने मंगलवार को महावीर मन्दिर में आयोजित संवाददाता सम्मेलन में यह महत्त्वपूर्ण घोषणा की। उन्होंने बताया कि विराट रामायण मन्दिर तीन मंजिला होगा। मन्दिर में प्रवेश के बाद प्रथम पूज्य विघ्नहर्ता भगवान गणेश के दर्शन होंगे। वहाँ से बढ़ते ही काले ग्रेनाइट की चट्टान से बने विशाल शिवलिंग के दर्शन होंगे। महाबलिपुरम में 250 टन वजन के ब्लैक ग्रेनाइट पत्थर की चट्टान को तराशकर मुख्य शिवलिंग के साथ सहस्रलिंगम भी बनाया जा रहा है। आठवीं शताब्दी के बाद सहस्रलिंगम का निर्माण भारत में नहीं हुआ है। शिवलिंग का वजन 200 टनय, ऊंचाई 33 फीट और गोलाई 33 फीट होगी। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि इतने वजन के शिवलिंग को लाने के लिए चकिया से कैथवलिया की 10 किलोमीटर की दूरी तक सड़क और पुल-पुलिया के चौड़ीकरण और सुदृढ़ीकरण का अनुरोध बिहार के मुख्यमन्त्री और पथ निर्माण मन्त्री से किया गया है।

आकार और ऊंचाई में भव्यतम होगा विराट रामायण मन्दिर

आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि मन्दिर का क्षेत्रफल 3.67 लाख वर्गफुट होगा। सबसे ऊंचा शिखर 270 फीट का होगा। 198 फीट का एक शिखर होगा। जबकि 180 फीट के चार शिखर रहेंगे। 135 फीट का एक शिखर और 108 फीट ऊंचाई के 5 शिखर होंगे। विराट रामायण मन्दिर की लंबाई 1080 फीट और चौड़ाई 540 फीट है। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि अयोध्या में बन रहे रामलला मन्दिर की लंबाई 360 फीट और चौड़ाई 235 फीट है। जबकि सबसे ऊंचा शिखर 135 फीट का है। विराट रामायण मन्दिर में शैव और वैष्णव देवी-देवताओं के कुल 22 मन्दिर होंगे। मन्दिर निर्माण के लिए 120 एकड़ जमीन उपलब्ध है।

इसे जानकी नगर के रूप में विकसित किया जाएगा, जहाँ कई आश्रम, गुरुकुल, धर्मशाला आदि होंगे। महावीर मन्दिर में आयोजित संवाददाता सम्मेलन में मन्दिर का पाइलिंग कार्य कराने वाली एजेंसी सनटेक इन्फ्रा के श्रवण कुमार झा, भास्कर मजूमदार और नीरज चौधरी भी मौजूद थे। कंपनी के अधिकारियों ने बताया कि विराट रामायण मन्दिर में कुल 3102 पिलर होंगे। पाइलिंग कार्य में 1050 टन स्टील और 15 हजार क्यूबिक मीटर कंक्रीट की खपत होगी। निर्माण में लगनेवाली सामग्रियाँ महावीर मन्दिर उपलब्ध कराएगा।

आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि बगैर अग्रिम भुगतान के एजेंसी कार्य करेगी। कार्य के आधार पर भुगतान किया जाएगा। विराट रामायण मन्दिर अयोध्या से जनकपुर तक बन रहे राम जानकी मार्ग पर अवस्थित है।

(शेष आवरण 3 पर)

व्रत-पर्व

आषाढ़, 2079-2080 वि. सं. (5 जून-3 जुलाई, 2023ई.)

पं. मुक्ति कुमार झा
ज्यौतिष परामर्शदाता, महावीर ज्योतिष मण्डप, महावीर मन्दिर, पटना

1. विघ्नराज चतुर्थी - 7, जून, 2023ई.

2. योगिनी एकादशी- 14 जून, 2023ई.

आषाढ कृष्ण एकादशी। गृहस्थों एवं वैष्णवों दोनों के लिए इसी दिन एकादशी का व्रत होगा

3. षडशीति संक्रान्ति, आषाढ की संक्रान्ति- 16 जून, 2023ई.

4. ग्रीष्म-नवरात्र आरम्भ- 19 जून, 2023ई.

आषाढ शुक्ल प्रतिपदा। इस दिन आषाढ मास की दुर्गापूजा आरम्भ हो रही है।

5. जगन्नाथ रथयात्रा- 20 जून, 2023 ई.

आषाढ शुक्ल द्वितीया। इस दिन जगन्नाथपुरी में रथयात्रा आरम्भ होगी। भगवान् जगन्नाथ के दर्शन का यह सबसे महत्त्वपूर्ण दिन है।

6. गणेश चतुर्थी- 21 जून, 2023ई.

7. पुलिकबन्धन- 25 जून, एवं 2 जुलाई, 2023ई. रविवार

परम्परानुसार आषाढ मास के शुक्लपक्ष के रविवार के दिन कलाई पर पुलिक यानी सर्पगंधा की जड़ बाँधी जाती है। मान्यता है कि यह कलाई पर बँधे रहने से साँप के काटने का डर नहीं रहता है। इस सम्बन्ध में पारम्परिक श्लोक है-

शुचिसितदिनकरवारे करमूले बद्धपुलिकमूलस्य।
नागारेरिव नागाः प्रयान्ति किल दूरतस्तस्य।।

इसे बाँधते समय मन्त्र के रूप में यह श्लोक पढ़ा जाता है। इसका अर्थ है कि आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष के रविवार के दिन कलाई में जो व्यक्ति पुलिक यानी सर्पगन्धा की जड़ को बाँधते हैं, साँप उनसे दूर चले जाते हैं, जेसे वे गरुड़ से दूर भागते हैं।

8. हरिशयन एकादशी- 29 जून, 2023ई. चातुर्मास्य प्रारम्भ

9. गुरु पूर्णिमा- 3 जुलाई, 2023ई.

***

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य– 'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय' इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तगण को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

महावीर मन्दिर समाचार- पृ. 78 का शेषांश

कंबोडिया सरकार की आपत्ति से पांच साल रुकावट, केन्द्रीय मंत्री ने की थी प्रशंसा विराट रामायण मन्दिर का नाम पहले विराट अंकोरवाट मन्दिर रखा गया था। कंबोडिया के अंकोरवाट मन्दिर से मिलते नाम के कारण कंबोडिया सरकार ने वर्ष 2012 में अपनी आपत्ति दर्ज की। उसी वर्ष मन्दिर का भूमि पूजन हुआ था। महावीर मन्दिर न्यास ने कंबोडिया की आपत्ति के बाद मन्दिर का नाम विराट रामायण मन्दिर कर दिया। 5 साल तक विभिन्न पत्राचार और कवायद के बाद भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की उस रिपोर्ट के बाद मामला सुलझा जिसमें विराट रामायण मन्दिर को अंकोरवाट मन्दिर से अलग बताया गया। विराट रामायण मन्दिर के निर्माण के लिए नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने भी अपनी अनापत्ति दी है। तत्कालीन केन्द्रीय संस्कृति एवं पर्यटन राज्यमंत्री डॉ महेश शर्मा ने दिनांक 15 फरवरी 2017 को आचार्य किशोर कुणाल को प्रेषित पत्र में विराट रामायण मन्दिर की प्रशंसा में लिखा था-

"I would like to convey my deep appreciation for the efforts made by your Organization in construction of a temple which appears to be an amalgamation of various architectural forms and designs evolved over a period of time in India and in nearby South&East Asian region- The compassion and maturity shown by your Organization in addressing the concerns of the Combodian Government is also commendable- *

मैं आपके संस्थान द्वारा एक ऐसे मन्दिर के निर्माण के लिए किए गए प्रयासों की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ जो भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया में विभिन्न कालखंडों में विकसित हुए वास्तु-शिल्पों का सम्मिश्रण प्रतीत होता है। कंबोडिया सरकार की आपत्तियों के निराकरण में आपके संस्थान की उदारता और परिपक्वता प्रशंसनीय है।'

- मीडिया प्रभारी श्री विवेक विकास

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

श्री महावीर स्थान न्यास समिति के लिए वीर बहादुर सिंह, महावीर मन्दिर, पटना- 800001 से ई-पत्रिका के रूप में https://mahavirmandirpatna.org/dharmayan/ पर निःशुल्क वितरित। सम्पादक : भवनाथ झा।